वितान

भाग 2

कक्षा 12 'आधार' पाठ्यक्रम के लिए
हिंदी की पूरक पाठ्यपुस्तक

for ku

भाग 2

कक्षा 12 'आधार' पाठ्यक्रम के लिए
हिंदी की पूरक पाठ्यपुस्तक

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING

प्रथम संस्करण
मार्च 2007 चैत्र 1928

पुनर्मुद्रण
सितम्बर 2007 भाद्रपद 1929
दिसंबर 2008 पौष 1930

PD 75T ML

© **राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, 2007**

रु 00.00

एन.सी.ई.आर.टी. वाटरमार्क 80 जी.एस.एम. पेपर पर मुद्रित।

प्रकाशन विभाग में सचिव, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविंद मार्ग, नई दिल्ली 110 016 द्वारा प्रकाशित तथा ....से मुद्रित।

ISBN 81-7450-696-9

सर्वाधिकार सुरक्षित

- प्रकाशक की पूर्व अनुमति के बिना इस प्रकाशन के किसी भाग को छापना तथा इलैक्ट्रॉनिकी, मशीनी, फोटोप्रतिलिपि, रिकॉर्डिंग अथवा किसी अन्य विधि से पुनः प्रयोग पद्धति द्वारा उसका संग्रहण अथवा प्रसारण वर्जित है।
- इस पुस्तक की बिक्री इस शर्त के साथ की गई है कि प्रकाशक की पूर्व अनुमति के बिना यह पुस्तक अपने मूल आवरण अथवा जिल्द के अलावा किसी अन्य प्रकार से व्यापार द्वारा उधारी पर, पुनर्विक्रय या किराए पर न दी जाएगी, न बेची जाएगी।
- इस प्रकाशन का सही मूल्य इस पृष्ठ पर मुद्रित है। रबड़ की मुहर अथवा चिपकाई गई पर्ची (स्टिकर) या किसी अन्य विधि द्वारा अंकित कोई भी संशोधित मूल्य गलत है तथा मान्य नहीं होगा।

एन सी ई आर टी के प्रकाशन विभाग के कार्यालय

एन.सी.ई.आर.टी. कैंपस
श्री अरविंद मार्ग
नयी दिल्ली 110 016 फोन : 011-26562708

108, 100 फीट रोड
हेली एक्सटेंशन, होस्डेकेरे
बनाशंकरी III इस्टेज
बैंगलूर 560 085 फोन : 080-26725740

नवजीवन ट्रस्ट भवन
डाकघर नवजीवन
अहमदाबाद 380 014 फोन : 079-27541446

सी.डब्ल्यू.सी. कैंपस
निकट: धनकल बस स्टॉप पनिहटी
कोलकाता 700 114 फोन : 033-25530454

सी.डब्ल्यू.सी. कॉम्प्लैक्स
मालीगांव
गुवाहाटी 781021 फोन : 0361-2674869

प्रकाशन सहयोग

अध्यक्ष, प्रकाशन विभाग	:	*पेय्येटि राजाकुमार*
मुख्य उत्पादन अधिकारी	:	*शिव कुमार*
मुख्य संपादक	:	*श्वेता उप्पल*
मुख्य व्यापार प्रबंधक	:	*गौतम गांगुली*
सहायक संपादक	:	*एम. लाल*
उत्पादन अधिकारी	:	*अरुन चितकारा*

आवरण एवं चित्र
अरविंदर चावला

आमुख

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (2005) सुझाती है कि बच्चों के स्कूली जीवन को बाहर के जीवन से जोड़ा जाना चाहिए। यह सिद्धांत किताबी ज्ञान की उस विरासत के विपरीत है जिसके प्रभाववश हमारी व्यवस्था आज तक स्कूल और घर के बीच अंतराल बनाए हुए है। नयी राष्ट्रीय पाठ्यचर्या पर आधारित पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तकें इस बुनियादी विचार पर अमल करने का प्रयास हैं। इस प्रयास में हर विषय को एक मज़बूत दीवार से घेर देने और जानकारी को रटा देने की प्रवृत्ति का विरोध शामिल है। आशा है कि ये कदम हमें राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) में वर्णित बाल-केंद्रित शिक्षा व्यवस्था की दिशा में काफ़ी दूर तक ले जाएँगे।

इस प्रयत्न की सफलता अब इस बात पर निर्भर है कि स्कूलों के प्राचार्य और अध्यापक बच्चों को कल्पनाशील गतिविधियों और सवालों की मदद से सीखने और सीखने के दौरान अपने अनुभवों पर विचार करने का कितना अवसर देते हैं। हमें यह मानना होगा कि यदि जगह, समय और आज़ादी दी जाए तो बच्चे बड़ों द्वारा सौंपी गई सूचना-सामग्री से जुड़कर और जूझकर नए ज्ञान का सृजन कर सकेंगे। शिक्षा के विविध साधनों एवं स्रोतों की अनदेखी किए जाने का प्रमुख कारण पाठ्यपुस्तक को परीक्षा का एकमात्र आधार बनाने की प्रवृत्ति है। सर्जना और पहल को विकसित करने के लिए ज़रूरी है कि हम बच्चों को सीखने की प्रक्रिया में पूरा भागीदार मानें और बनाएँ, उन्हें ज्ञान की निर्धारित खुराक का ग्राहक मानना छोड़ दें।

ये उद्देश्य स्कूल की दैनिक ज़िंदगी और कार्यशैली में काफ़ी फेरबदल की माँग करते हैं। दैनिक समय-सारणी में लचीलापन उतना ही ज़रूरी है जितना वार्षिक कैलेंडर के अमल में चुस्ती, जिससे शिक्षण के लिए नियत दिनों की संख्या हकीकत बन सके। शिक्षण और मूल्यांकन की विधियाँ भी इस बात को तय करेंगी कि यह पाठ्यपुस्तक स्कूल में बच्चों के जीवन को मानसिक दबाव तथा बोरियत की जगह खुशी का अनुभव बनाने में कितनी प्रभावी सिद्ध होती है। बोझ की समस्या से निपटने के लिए पाठ्यक्रम निर्माताओं ने विभिन्न चरणों में ज्ञान का पुनर्निर्धारण करते समय बच्चों के मनोविज्ञान एवं अध्यापन के लिए उपलब्ध समय का ध्यान रखने की पहले से अधिक सचेत कोशिश की है। इस कोशिश को और गहराने के यत्न में यह पाठ्यपुस्तक सोच-विचार और विस्मय, छोटे समूहों में बातचीत एवं बहस, और हाथ से की जाने वाली गतिविधियों को प्राथमिकता देती है।

एन.सी.ई.आर.टी. इस पुस्तक की रचना के लिए बनाई गई पाठ्यपुस्तक निर्माण समिति के परिश्रम के लिए कृतज्ञता व्यक्त करती है। परिषद् भाषा सलाहकार समिति के अध्यक्ष प्रो. नामवर सिंह और इस पुस्तक के मुख्य सलाहकार प्रो. पुरुषोत्तम अग्रवाल की विशेष आभारी है। इस पाठ्यपुस्तक के विकास में कई शिक्षकों ने योगदान किया; इस योगदान को संभव बनाने के लिए परिषद् उनके प्राचार्यों एवं उन सभी संस्थाओं और संगठनों के प्रति कृतज्ञ है जिन्होंने अपने संसाधनों, सामग्री तथा सहयोगियों की मदद लेने में उदारतापूर्वक सहयोग दिया। परिषद् माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा विभाग, मानव संसाधन विकास मंत्रालय द्वारा प्रोफ़ेसर मृणाल मीरी एवं प्रोफ़ेसर जी.पी. देशपांडे की अध्यक्षता में गठित निगरानी समिति (मॉनिटरिंग कमेटी) के सदस्यों को अपना मूल्यवान समय और सहयोग देने के लिए धन्यवाद देती है। व्यवस्थागत सुधारों और अपने प्रकाशनों में निरंतर निखार लाने के प्रति समर्पित एन.सी.ई.आर.टी. टिप्पणियों एवं सुझावों का स्वागत करेगी जिनसे भावी संशोधनों में मदद ली जा सके।

निदेशक
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और
प्रशिक्षण परिषद्

नयी दिल्ली
20 नवंबर 2006

पाठ्यपुस्तक निर्माण समिति

अध्यक्ष, भाषा सलाहकार समिति

नामवर सिंह, *पूर्व अध्यक्ष,* भारतीय भाषा केंद्र, जे.एन.यू., नयी दिल्ली

मुख्य सलाहकार

पुरुषोत्तम अग्रवाल, *प्रो.फ़ेसर,* भारतीय भाषा केंद्र, जे.एन.यू., नयी दिल्ली

मुख्य समन्वयक

रामजन्म शर्मा, *प्रो.फ़ेसर एवं अध्यक्ष,* भाषा विभाग, एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली

सदस्य

अनामिका, *रीडर,* सत्यवती कॉलेज, नयी दिल्ली

अनूप कुमार, *रीडर,* क्षेत्रीय शिक्षा संस्थान, भुवनेश्वर

उषा शर्मा, *वरिष्ठ प्रवक्ता,* डाइट, नयी दिल्ली

दिलीप सिंह, *प्रो.फ़ेसर एवं कुल सचिव,* दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, चेन्नई

नीलकंठ कुमार, *पी.जी.टी,* राजकीय बाल विद्यालय, नयी दिल्ली

नीरजा रानी, *पी.जी.टी.,* चंद्र आर्य विद्यामंदिर, ईस्ट ऑफ़ कैलाश, नयी दिल्ली

रवीन्द्र कुमार पाठक, *पी.जी.टी,* राजकीय वरिष्ठ माध्यमिक बाल विद्यालय, भारत नगर, दिल्ली

रवीन्द्र त्रिपाठी, *पत्रकार,* नयी दिल्ली

रामबक्ष, *प्रो.फ़ेसर,* इग्नू, नयी दिल्ली

संजीव कुमार, *वरिष्ठ प्रवक्ता,* देशबन्धु कॉलेज, नयी दिल्ली

समीर वरण नंदी, *प्रवक्ता,* बी.एच.ई.एल. स्कूल, हरिद्वार

सदस्य-समन्वयक

संध्या सिंह, *रीडर,* भाषा विभाग, एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली

आभार

इस पुस्तक में रचनाओं को सम्मिलित करने की स्वीकृति देने के लिए सभी रचनाकारों / परिजनों, प्रकाशकों तथा मोअनजो-दड़ो संबंधी कुछ चित्रों के लिए ओम थानवी के प्रति हम कृतज्ञ हैं।

इस पुस्तक के निर्माण में सहयोग के लिए हम विशेष आमंत्रित शारदा कुमारी, *प्रवक्ता,* डाइट, आर.के. पुरम्, नयी दिल्ली तथा पुस्तक के निर्माण में तकनीकी सहयोग के लिए कंप्यूटर स्टेशन (भाषा विभाग) के *प्रभारी* परशराम कौशिक; *कॉपी एडीटर* समीना उसमानी और पूजा नेगी; *प्रूफ़ रीडर* कविता और कमलेश कुमारी एवं *डी.टी.पी. ऑपरेटर* कमल कुमार और सचिन कुमार के प्रति आभारी हैं।

यह पुस्तक

शिक्षा का वितान (फैलाव) एक ऐसा तंबू है जो अपने भीतर पूरे विश्व को समेट लेता है। किसी प्रकार की सीमा या बंधन इसके आड़े नहीं आते। खासतौर से जब भाषा के संबंध में शिक्षा की बात की जाए तब अनुशासन (विषयगत) की सीमा भी नहीं रहती। बारहवीं कक्षा में हिंदी (आधार) पढ़ने वाले विद्यार्थियों के लिए ***वितान भाग 2*** की परिकल्पना की गई तो भाषा, देश, विधा, आकार पर गहनता से विचार किया गया। किसी भी प्रकार की सीमा आड़े नहीं आई। रचनाएँ ऐसी चुनी गईं जो रुचिकर होने के साथ-साथ विशाल दुनिया के अतीत, वर्तमान और भविष्य से बच्चों को साक्षात्कार करा सकें।

इस पुस्तक में कुल चार रचनाएँ हैं। ये आकार में लंबी हैं। आत्मकथात्मक उपन्यास अंश और एक लंबी डायरी के कुछ पन्ने भी दिए गए हैं। ये वे रचनाएँ हैं जिन्हें स्वतंत्र रूप में पढ़ने के साथ-साथ पूरी रचना को पढ़ने की चाह पैदा होगी।

सिल्वर वैडिंग– एक लंबी कहानी। मनोहर श्याम जोशी की अन्य रचनाओं से अलग दिखती सी (पर है नहीं)। यह कहानी अपने शिल्प में जोशी जी के चिर परिचित भाषिक अंदाज़ और मुहावरों से युक्त है। आधुनिकता की ओर बढ़ता हमारा समाज एक ओर कई नयी उपलब्धियों को समेटे हुए है तो दूसरी ओर मनुष्य को मनुष्य बनाए रखने वाले मूल्य कहीं घिसते चले गए हैं। ***जो हुआ होगा*** और ***समहाउ इंप्रापर***

ये दो जुमले इस कहानी के बीज वाक्य हैं। ***जो हुआ होगा*** में यथास्थितिवाद यानी ज्यों का त्यों स्वीकार कर लेने का भाव है तो ***समहाउ इंप्रापर*** में एक अनिर्णय की स्थिति भी है। ये दोनों ही भाव इस कहानी के मुख्य चरित्र यशोधर बाबू के भीतर के द्वंद्व हैं। ये दोनों ही स्थितियाँ हालात को ज्यों का त्यों स्वीकार कर बदलाव को असंभव बना देने की ओर ले जाती हैं। महत्त्वपूर्ण बात यह है कि यशोधर बाबू इन स्थितियों का ज़िम्मेदार किसी व्यक्ति को नहीं ठहराते। वे अनिर्णय की स्थिति में हैं। यशोधर बाबू जहाँ बच्चों की तरक्की से खुश होते हैं वहीं ***समहाउ इंप्रापर*** यह भी अनुभव करते हैं कि वह खुशहाली भी कैसी जो अपनों में परायापन पैदा करे। इसी द्वंद्व के साथ-साथ इस कहानी को यशोधर बाबू के बहाने देश के ***प्रापर*** विकास में बाधक ***समहाउ इंप्रापर*** तत्त्वों की तलाश के रूप में भी पढ़ा जा सकता है।

जूझ– यह मराठी के प्रख्यात कथाकार डॉ. आनंद यादव का बहुचर्चित एवं बहुप्रशंसित आत्मकथात्मक उपन्यास है, जिसका एक अंश यहाँ दिया गया है। यह एक किशोर के देखे और भोगे हुए गँवई जीवन के खुरदरे यथार्थ और उसके रंगारंग परिवेश की अत्यंत विश्वसनीय जीवंत गाथा है। इस आत्मकथात्मक उपन्यास में जीवन का मर्मस्पर्शी चित्रण तो है ही, अस्त-व्यस्त-अलमस्त निम्नमध्यवर्गीय ग्रामीण समाज और लड़ते-जूझते किसान-मज़दूरों के संघर्ष की भी अनूठी झाँकी है।

यहाँ लिए गए अंश में हर स्थिति में पढ़ने की लालसा लिए धीरे-धीरे साहित्य, संगीत और अन्य विषयों की ओर बढ़ते किशोर के कदमों की आकुल आहट सुनी जा सकती है। जो निश्चय ही किशोर होते विद्यार्थियों के लिए हमकदम बन सकती है।

अतीत में दबे पाँव– इतिहास हमें दिशा दे सकता है तो ऐतिहासिक नगर सभ्यता के विकास को दिशा दे सकते हैं। इसी संदर्भ में यह रचना ओम थानवी की यात्रा वृत्तांत और रिपोर्ट का मिला-जुला रूप है, जो अब तक के ज्ञान में भारतीय भूमि ही नहीं विश्व फलक पर घटित सभ्यता की सबसे प्राचीन घटना को उतने ही सुनियोजित ढंग से पुनर्जीवित करता है, जितने सुनियोजित ढंग से उसके दो महान नगर मुअनजो-दड़ो और हड़प्पा बसे थे। लेखक ने टीलों, स्नानागारों, मृदभांडो, कुओं-तालाबों, मकानों व मार्गों से प्राप्त पुरातत्त्वों में मानव-संस्कृति की उस समझदार-भावात्मक घटना को बड़े इत्मीनान से

खोज-खोज कर हमें दिखलाया है, जिससे हम इतिहास की सपाट वर्णनात्मकता से ग्रस्त होने की जगह इतिहास बोध से तर (सिक्त) होते हैं (जिस प्रकार सिंधु घाटी सभ्यता एक समय प्राणधारा से तर थी)। सिंधु सभ्यता के सबसे बड़े शहर मुअनजो-दड़ो की नगर-योजना अभिभूत करती है। वह आज के सेक्टर-मार्का कॉलोनियों के नीरस नियोजन की अपेक्षा ज़्यादा रचनात्मक थी, क्योंकि उसकी बसावट शहर के खुद विकसने का अवकाश भी छोड़ कर चलती थी। पुरातत्त्व के निष्प्राण पड़े चिह्नों से एक ज़माने में, आबाद घरों, लोगों और उनकी सामाजिक-धार्मिक-राजनीतिक व आर्थिक गतिविधियों का पुख्ता अनुमान किया जा सकता है। वह सभ्यता ताकत के बल पर शासित होने की जगह आपसी समझ से अनुशासित थी। उसमें भव्यता थी, पर आडंबर नहीं था। उसकी खूबी उसका सौंदर्यबोध था, जो राजपोषित या धर्मपोषित न होकर समाज पोषित था। अतीत की ऐसी कहानियों के स्मारक चिह्नों का आधुनिक व्यवस्था के विकास-अभियानों की भेंट चढ़ते जाना भी लेखक को कचोटता है।

डायरी के पन्ने– यह डच भाषा में 1947 में प्रकाशित हुई थी। उसके बाद ***द डायरी ऑफ़ ए यंग गर्ल*** शीर्षक से 1952 में प्रकाशित हुई। ***डायरी के पन्ने*** नाम से यहाँ उसके कुछ अंश दिए जा रहे हैं। युद्ध के चलते इतिहास बनते हैं, बदलते हैं और बिगड़ते भी हैं। युद्ध से भौगोलिक नक्शा बदल जाता है। कई बार खास इलाकों के मनुष्यों, जाति और संस्कृति का नामोनिशान समाप्त कर देता है युद्ध। युद्ध का दंश कई पीढ़ियों को भी झेलना पड़ता है जैसे जापान।

1933 के मार्च महीने में फ़्रैंकफर्ट के नगरनिगम चुनावों में हिटलर की नाज़ी पार्टी की जीत के तुरंत बाद जब वहाँ यहूदी-विरोधी प्रदर्शनों ने ज़ोर पकड़ा, तब फ़्रैंक परिवार ने अपने को असुरक्षित महसूस करते हुए धीरे-धीरे अपना बसेरा नीदरलैंड्स के एम्सटर्डम शहर में स्थानांतरित कर लिया। वहाँ द्वितीय विश्वयुद्ध की शुरुआत (1939) तक तो सब कुछ ठीक-ठाक रहा, किंतु मई 1940 में नीदरलैंड्स पर जर्मनी का कब्ज़ा होने के बाद हालात बिगड़ने लगे। यहूदियों के उत्पीड़न का दौर शुरू हो गया। उन्हें तरह-तरह के भेदभावपूर्ण एवं अपमानजनक नियम-कायदों को मानने के लिए बाध्य किया जाने लगा। इन परिस्थितियों के बीच फ़्रैंक परिवार 1942 के जुलाई महीने में अज्ञातवास पर चला गया, जिसकी योजना तो पहले ही बनाई जा चुकी थी, लेकिन जिसका तात्कालिक कारण बना, ऐन की बड़ी बहन मार्गोट को 'सेंट्रल ऑफ़िस फॉर ज्यूइश इम्मीग्रेशन' से आया बुलावा। एक युवती के लिए इस बुलावे के खतरनाक मायनों को देखते हुए फ़्रैंक परिवार ने तत्काल गोपनीय स्थान में जा छुपने का निर्णय लिया और वे अपने बदन पर कपड़ों की कई तहें जमाए (क्योंकि साज़ो-सामान लेकर निकलना उन्हें संदेहास्पद बना देता) पैदल (क्योंकि यहूदियों को किसी सवारी पर चलना मना था) उस जगह की ओर निकल पड़े। यह जगह थी, ऑटो फ़्रैंक के दफ़्तर के भवन में पिछवाड़े की दो मंज़िलें, जिन तक पहुँचने की सीढ़ी अलमारियों की एक कतार के पीछे छिपी थी। यहाँ दो मित्र-परिवारों के चार और सदस्य उनके साथ रहने आ गए। इन आठ अज्ञातवासियों को फ़्रैंक साहब के ऑफ़िस में काम करने वाले ईसाई कर्मचारियों की भरपूर मदद मिली और वे दो साल से कुछ ज़्यादा ही वक्त काट ले गए। 4 अगस्त, 1944 को किसी की दी हुई जानकारी के आधार पर गेस्टापो (हिटलर की खुफ़िया पुलिस) ने इस गोपनीय निवास पर छापा मारा, सभी लोग नाज़ियों के हत्थे चढ़ गए और उन्हें यहूदियों के लिए बने यातनागृह में भेज दिया गया। महायुद्ध में मित्र राष्ट्रों के हाथ जर्मनी की पराजय के बाद जब यातनागृहों में कैद यहूदियों को आज़ाद कराया गया (अप्रैल, 1945), तब फ़्रैंक परिवार के सदस्यों में से सिर्फ़ पिता जीवित रह गए थे। नाज़ियों की सांप्रदायिक-नस्ली घृणा की आग ने जिन लाखों निर्दोष यहूदियों की आहुति ली, उनमें अपनी माँ और बहन के साथ ऐन भी शामिल थी।

ऐन फ़्रैंक की बहुचर्चित डायरी दो साल के उसी अज्ञातवास के दरम्यान लिखी गई थी। अपने तेरहवें जन्मदिन–12 जून, 1942–पर जब उसे सफ़ेद और लाल कपड़े की जिल्दवाली नोटबुक दी गई, तभी उसने तय कर लिया था कि इस नोटबुक को वह अपनी

डायरी बनाएगी। डायरी उसने उपहार में ही मिली एक गुड़िया–किट्टी–को संबोधित करके लिखनी शुरू की। गोपनीय जीवन की तब शुरुआत नहीं हुई थी, लेकिन महीने भर के अंदर वह नौबत आन पड़ी। ऐन का डायरी लिखना जारी रहा। आखिरी हिस्सा उसने पहली अगस्त, 1944 को लिखा, जिसके तीन दिन बाद वह दूसरे सात लोगों समेत नाज़ी पुलिस के हत्थे चढ़ गई। संयोग से उसकी डायरी पुलिस के हाथ नहीं लगी और यातनागृह से जीवित निकल आने वाले ऑटो फ्रैंक ने जब उसे पढ़ा, तो वे अपनी छोटी–सी बिटिया के लेखन की गहराई और नाज़ी दमन के दस्तावेज़ के रूप में उस लेखन के महत्त्व के कायल हो गए। उन्होंने हर संभव कोशिश करके 1947 में इस डायरी को प्रकाशित करवाया और शनैः-शनैः वह दुनिया की सबसे अधिक पढ़ी जाने वाली किताबों की सूची में शामिल हो गई।

यह डायरी इतिहास के एक सबसे आतंकप्रद और दर्दनाक अध्याय के साक्षात् अनुभव का बयान करती है। हम यहाँ उस भयावह दौर को किसी इतिहासकार की निगाह से नहीं, सीधे भोक्ता की निगाह से देखते हैं। और यह भोक्ता ऐसा है, जिसकी समझ और संवेदना बहुत गहरी तो है ही, उम्र के साथ आने वाले दूषणों से पूरी तरह अछूती भी है। इस पुस्तक के हिंदी अनुवाद में इसका परिचय देते हुए ठीक ही लिखा गया है–"इस डायरी में भय, आतंक, भूख, प्यार, मानवीय संवेदनाएँ, प्रेम, घृणा, बढ़ती उम्र की तकलीफ़ें, हवाई हमले के डर, पकड़े जाने का लगातार डर, तेरह साल की उम्र के सपने, कल्पनाएँ, बाहरी दुनिया से अलग-थलग पड़ जाने की पीड़ा, मानसिक और शारीरिक ज़रूरतें, हँसी-मज़ाक, युद्ध की पीड़ा, अकेलापन सभी कुछ है। यह डायरी यहूदियों पर ढाए गए जुल्मों का एक जीवंत दस्तावेज़ है।"

भारत का संविधान

उद्देशिका

हम, भारत के लोग, भारत को एक **संपूर्ण प्रभुत्व-संपन्न, समाजवादी, पंथ-निरपेक्ष, लोकतंत्रात्मक गणराज्य** बनाने के लिए तथा उसके समस्त नागरिकों को:

सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक **न्याय,**
विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म
और उपासना की **स्वतंत्रता,**
प्रतिष्ठा और अवसर की **समता**
प्राप्त कराने के लिए,
तथा उन **सबमें** व्यक्ति की गरिमा और
राष्ट्र की एकता और अखंडता
सुनिश्चित करने वाली बंधुता बढ़ाने के लिए

दृढ़संकल्प होकर **अपनी इस संविधान सभा में** आज तारीख 26 नवंबर, 1949 ई. (मिति मार्गशीर्ष शुक्ल सप्तमी, संवत् दो हज़ार छह विक्रमी) को **एतदद्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।**

fo"k; & ph

आमुख *iii*

यह पुस्तक *vii*

1

सिल्वर वैडिंग

मनोहर श्याम जोशी 1

2

जूझ

आनंद यादव 21

3

अतीत में दबे पाँव

ओम थानवी 35

4

डायरी के पन्ने

ऐन फ्रैंक 53

1

मनोहर श्याम जोशी

सिल्वर वैडिंग

जब सेक्शन आफ़िसर वाई.डी. (यशोधर) पंत ने आखिरी फ़ाइल का लाल फीता बाँधकर निगाह मेज़ से उठाई तब दफ़्तर की पुरानी दीवार घड़ी पाँच बजकर पच्चीस मिनट बजा रही थी। उनकी अपनी कलाई घड़ी में साढ़े पाँच बज रहे थे। पंतजी अपनी घड़ी रोज़ाना सुबह-शाम रेडियो समाचारों से मिलाते हैं इसलिए उन्होंने दफ़्तर की घड़ी को ही सुस्त ठहराया। फ़ाइल आउट ट्रे में डालकर उन्होंने एक निगाह अपने मातहतों पर डाली जो उनके ही कारण पाँच बजे के बाद भी दफ़्तर में बैठने को मजबूर होते हैं। चलते-चलते जूनियरों से कोई मनोरंजक बात कर दिन भर के शुष्क व्यवहार का निराकरण कर जाने की कृष्णानंद (किशनदा) पांडे से मिली हुई परंपरा का पालन करते हुए उन्होंने कहा, "आप लोगों की देखादेखी सेक्शन की घड़ी भी सुस्त हो गई है!"

सीधे 'असिस्टेंट ग्रेड' में आए नए छोकरे चड्ढा ने, जिसकी चौड़ी मोहरीवाली पतलून और ऊँची एड़ी वाले जूते पंतजी को, 'सम हाउ इंप्रापर' मालूम होते हैं, थोड़ी बदतमीज़ी-सी की। 'ऐज यूज़ुअल' बोला, "बड़े बाऊ, आपकी अपनी चूनेदानी का क्या हाल है? वक्त सही देती है?"

पंतजी ने चड्ढा की धृष्टता को अनदेखा किया और कहा, "मिनिट-टू-मिनिट करेक्ट चलती है।"

चड्ढा ने कुछ और धृष्ट होकर पंतजी की कलाई थाम ली। इस तरह की धृष्टता का प्रकट विरोध करना यशोधर बाबू ने छोड़ दिया है। मन-ही-मन वह उस ज़माने की याद ज़रूर करते हैं जब दफ़्तर में वह किशनदा को भाई नहीं 'साहब' कहते और समझते थे। घड़ी की ओर देखकर वह बोला, "बाबा आदम के ज़माने की है बड़े बाऊ यह तो! अब तो डिजिटल ले लो एक जापानी। सस्ती मिल जाती है।"

"यह घड़ी मुझे शादी में मिली थी। हम पुरानी चाल के, हमारी घड़ी पुरानी चाल की। अरे यही बहुत है कि अब तक 'राईट टाईम' चल रही है—क्यों कैसी रही?"

इस तरह का नहले पर दहला जवाब देते हुए एक हाथ आगे बढ़ा देने की परंपरा थी, रेम्जे स्कूल, अल्मोड़ा में जहाँ से कभी यशोधर बाबू ने मैट्रिक की परीक्षा पास की थी। इस तरह के आगे बढ़े हुए हाथ पर सुनने वाला बतौर दाद अपना हाथ मारा करता था और वक्ता-श्रोता दोनों ठठाकर हाथ मिलाया करते थे। ऐसी ही परंपरा किशनदा के क्वार्टर में भी थी जहाँ रोज़ी-रोटी की तलाश में आए यशोधर पंत नामक एक मैट्रिक पास बालक को शरण मिली थी कभी। किशनदा कुँआरे थे और पहाड़ से आए हुए कितने ही लड़के ठीक-ठिकाना होने से पहले उनके यहाँ रह जाते थे। मैस जैसी थी। मिलकर लाओ, पकाओ, खाओ। यशोधर बाबू जिस समय दिल्ली आए थे उनकी उम्र सरकारी नौकरी के लिए कम थी। कोशिश करने पर भी 'बॉय सर्विस' में वह नहीं लगाए जा सके। तब किशनदा ने उन्हें मैस का रसोइया बनाकर रख लिया। यही नहीं, उन्होंने यशोधर को पचास रुपये उधार भी दिए कि वह अपने लिए कपड़े बनवा सके और गाँव पैसा भेज सके। बाद में इन्हीं किशनदा ने अपने ही नीचे नौकरी दिलवाई और दफ़्तरी जीवन में मार्ग-दर्शन किया।

चड्ढा ने ज़ोर से कहा, "बड़े बाऊ, आप किन खयालों में खो गए? मेनन पूछ रहा है कि आपकी शादी हुई कब थी?"

यशोधर बाबू ने सकपकाकर अपना बढ़ा हुआ हाथ वापस खींचा और मेनन से मुखातिब होकर बोले, "नाव लैट मी सी, आई वॉज़ मैरिड ऑन सिक्स्थ फ़रवरी नाइंटिन फ़ोर्टी सेवन।"

मेनन ने फ़ौरन हिसाब लगाया और चहककर बोला, "मैनी हैप्पी रिटर्न्स आफ़ द डे सर! आज तो आपका 'सिल्वर वैडिंग' है। शादी को पूरा पच्चीस साल हो गया।"

यशोधर जी खुश होते हुए झेंपे और झेंपते हुए खुश हुए। यह अदा उन्होंने किशनदा से सीखी थी।

चड्ढा ने घंटी बजाकर चपरासी को बुलाया और कहा, "सुन भई भगवानदास, बड़े बाऊ से बड़ा नोट ले और सारे सेक्शन के लिए चा-पानी का इंतज़ाम कर फटाफट।"

यशोधर जी बोले, "अरे ये 'वैडिंग एनिवर्सरी' वगैरह सब गोरे साहबों के चोंचले हैं–हमारे यहाँ थोड़ी मानते हैं।"

चड्ढा बोला, "मिक्चर मत पिलाइए गुरुदेव। चाय-मट्ठी-लड्डू बस इतना ही तो सौदा है। इनमें कौन आपकी बड़ी माया निकली जानी है।"

यशोधर बाबू ने जेब से बटुआ और बटुए में से दस का नोट निकाला और कहा, "आप लोग चाय पीजिए, 'दैट' तो 'आई डू नाट माइंड', लेकिन जो हमारे लोगों में 'कस्टम' नहीं है, उस पर 'इनसिस्ट' करना, 'दैट' मैं 'समहाउ इंप्रॉपर फ़ाइंड' करता हूँ।"

चड्ढा ने दस का नोट चपरासी को दिया और पुनः बड़े बाऊ के आगे हाथ फैला दिया कि एक नोट से सेक्शन का क्या बनता है? रुपये तीस हों तो चुग्गे भर का जुगाड़ करा सकें।

सारा सेक्शन जानता है कि यशोधर बाबू अपने बटुए में सौ-डेढ़ सौ रुपये हमेशा रखते हैं भले ही उनका दैनिक खर्च नगण्य है। और तो और, बस-टिकट का खर्च भी नहीं। गोल मार्केट से 'सेक्रेट्रिएट' तक पहले साइकिल में आते-जाते थे, इधर पैदल आने-जाने लगे हैं क्योंकि उनके बच्चे आधुनिक युवा हो चले हैं और उन्हें अपने पिता का साइकिल-सवार होना सख्त नागवार गुज़रता है। बच्चों के अनुसार साइकिल तो चपरासी चलाते हैं। बच्चे चाहते हैं कि पिताजी स्कूटर ले लें। लेकिन पिताजी को 'समहाउ' स्कूटर निहायत बेहूदा सवारी मालूम होती है और कार जब 'अफ़ोर्ड' की नहीं जा सकती तब उसकी बात सोचना ही क्यों?

चड्ढा के ज़ोर देने पर बड़े बाऊ ने दस-दस के नोट दो और दे दिए लेकिन सारे सेक्शन के इसरार करने पर भी वह अपनी 'सिल्वर वैडिंग' की इस दावत के लिए रुके नहीं। मातहत लोगों से चलते-चलाते थोड़ा हँसी-मज़ाक कर लेना किशनदा की परंपरा में है। उनके साथ बैठकर चाय-पानी और गप्प-गप्पाष्टक में वक्त बरबाद करना उस परंपरा के विरुद्ध है।

इधर यशोधर बाबू ने दफ़्तर से लौटते हुए रोज़ बिड़ला मंदिर जाने और उसके उद्यान में बैठकर कोई प्रवचन सुनने अथवा स्वयं ही प्रभु का ध्यान लगाने की नयी रीत अपनाई है।

यह बात उनके पत्नी-बच्चों को बहुत अखरती है। बब्बा, आप कोई बुड्ढे थोड़ी हैं जो रोज़-रोज़ मंदिर जाएँ, इतने ज़्यादा व्रत करें—ऐसा कहते हैं वे। यशोधर बाबू इस आलोचना को अनसुना कर देते हैं। सिद्धांत के धनी की, किशनदा के अनुसार, यही निशानी है!

बिड़ला मंदिर से उठकर यशोधर बाबू पहाड़गंज जाते हैं और घर के लिए साग-सब्ज़ी खरीद लाते हैं। किसी से मिलना-मिलाना हो तो वह भी इसी समय कर लेते हैं। तो भले ही दफ़्तर पाँच बजे छूटता हो वह घर आठ बजे से पहले नहीं पहुँचते।

आज बिड़ला मंदिर जाते हुए यशोधर बाबू की निगाह उस अहाते पर पड़ी जिसमें कभी किशनदा का तीन बैडरूम वाला क्वार्टर हुआ करता था और जिस पर इन दिनों एक छह मंज़िला इमारत बनाई जा रही है। इधर से गुज़रते हुए कभी के 'डी.आई.जैड.' एरिया की बदलती शक्ल देखकर यशोधर बाबू को बुरा-सा लगता है। ये लोग सारा गोल मार्केट क्षेत्र तोड़कर यहाँ एक मंज़िला क्वार्टरों की जगह ऊँची इमारतें बना रहे हैं। यशोधर बाबू को पता नहीं कि वे लोग ठीक कर रहे हैं कि गलत कर रहे हैं। उन्हें यह ज़रूर पता है कि उनकी यादों के गोल मार्केट के ढहाए जाने का गम मनाने के लिए उनका इस क्षेत्र में डटे रहना निहायत ज़रूरी है। उन्हें एंड्रयूज़गंज, लक्ष्मीबाई नगर, पंडारा रोड आदि नयी बस्तियों में पद की गरिमा के अनुरूप डी-2 टाइप क्वार्टर मिलने की अच्छी खबर कई बार आई है मगर हर बार उन्होंने गोल मार्केट छोड़ने से इंकार कर दिया है। जब उनका क्वार्टर टूटने का नंबर आया तब भी उन्होंने इसी क्षेत्र की इन बस्तियों में बचे हुए क्वार्टरों में एक अपने नाम अलाट करा लिया। पत्नी के यह पूछने पर कि जब यह भी टूट जाएगा तब क्या करोगे? उन्होंने कहा– तब की तब देखी जाएगी। कहा और उसी तरह मुसकुराए जिस तरह किशनदा यही फ़िकरा कह कर मुसकुराते थे।

सच तो यह है कि पिछले कई वर्षों से यशोधर बाबू का अपनी पत्नी और बच्चों से हर छोटी-बड़ी बात में मतभेद होने लगा है और इसी वजह से वह घर जल्दी लौटना पसंद नहीं करते। जब तक बच्चे छोटे थे तब तक वह उनकी पढ़ाई-लिखाई में मदद कर सकते थे।

अब बड़ा लड़का एक प्रमुख विज्ञापन संस्था में नौकरी पा गया है। यद्यपि 'समहाउ' यशोधर बाबू को अपने साधारण पुत्र को असाधारण वेतन देने वाली यह नौकरी कुछ समझ में आती नहीं।

वह कहते हैं कि डेढ़ हज़ार रुपया तो हमें अब रिटायरमेंट के पास पहुँच कर मिला है, शुरू में ही डेढ़ हज़ार रुपया देने वाली इस नौकरी में ज़रूर कुछ पेंच होगा। यशोधर जी का दूसरा बेटा दूसरी बार आई.ए.एस. देने की तैयारी कर रहा है और यशोधर बाबू के लिए यह समझ सकना असंभव है कि जब यह पिछले साल 'एलाइड सर्विसेज़' की सूची में, माना काफ़ी नीचे आ गया था, तब इसने 'ज्वाइन' करने से इंकार क्यों कर दिया? उनका तीसरा बेटा स्कालरशिप लेकर अमरीका चला गया है और उनकी एकमात्र बेटी न केवल तमाम प्रस्तावित वर अस्वीकार करती चली जा रही है बल्कि डाक्टरी की उच्चतम शिक्षा के लिए स्वयं भी अमरीका चले जाने की धमकी दे रही है। यशोधर बाबू जहाँ बच्चों की इस तरक्की से खुश होते हैं वहाँ 'समहाउ' यह भी अनुभव करते हैं कि वह खुशहाली भी कैसी जो अपनों में परायापन पैदा करे। अपने बच्चों द्वारा गरीब रिश्तेदारों की उपेक्षा उन्हें 'समहाउ' जँचती नहीं। 'एनीवे– जेनरेशनों में गैप तो होता ही है सुना'–ऐसा कहकर स्वयं को दिलासा देता है पिता।

यद्यपि यशोधर बाबू की पत्नी अपने मूल संस्कारों से किसी भी तरह आधुनिक नहीं है तथापि बच्चों की तरफ़दारी करने की मातृसुलभ मजबूरी ने उन्हें भी मॉड बना डाला है। कुछ यह भी है कि जिस समय उनकी शादी हुई थी यशोधर बाबू के साथ गाँव से आए ताऊजी और उनके दो विवाहित बेटे भी रहा करते थे। इस संयुक्त परिवार में पीछे ही पीछे बहुओं में गज़ब के तनाव थे लेकिन ताऊजी के डर से कोई कुछ कह नहीं पाता था। यशोधर बाबू की पत्नी को शिकायत है कि संयुक्त परिवार वाले उस दौर में पति ने हमारा पक्ष कभी नहीं लिया, बस जिठानियों की चलने दी। उनका यह भी कहना है कि मुझे आचार-व्यवहार के ऐसे बंधनों में रखा गया मानो मैं जवान औरत नहीं, बुढ़िया थी। जितने भी नियम इनकी

बुढ़िया ताई के लिए थे, वे सब मुझ पर भी लागू करवाए–ऐसा कहती है घरवाली बच्चों से। बच्चे उससे सहानुभूति व्यक्त करते हैं। फिर वह यशोधर जी से उन्मुख होकर कहती है–तुम्हारी ये बाबा आदम के ज़माने की बातें मेरे बच्चे नहीं मानते तो इसमें उनका कोई कसूर नहीं। मैं भी इन बातों को उसी हद तक मानूँगी जिस हद तक सुभीता हो। अब मेरे कहने से वह सब ढोंग-ढकोसला हो नहीं सकता–साफ़ बात।

धर्म-कर्म, कुल-परंपरा सबको ढोंग-ढकोसला कहकर घरवाली आधुनिकाओं-सा आचरण करती है तो यशोधर बाबू 'शानयल बुढ़िया', 'चटाई का लँहगा' या 'बूढ़ी मुँह मुँहासे, लोग करें तमासे' कहकर उसके विद्रोह को मज़ाक में उड़ा देना चाहते हैं, अनदेखा कर देना चाहते हैं लेकिन यह स्वीकार करने को बाध्य भी हो जाते हैं कि तमाशा स्वयं उनका बन रहा है।

जिस जगह किशनदा का क्वार्टर था उसके सामने खड़े होकर एक गहरा नि:श्वास छोड़ते हुए यशोधर जी ने अपने से पूछा कि क्या यह 'बैटर' नहीं रहता कि किशनदा की तरह, घर-गृहस्थी का बवाल ही न पाला होता और 'लाइफ़' कम्यूनिटी के लिए 'डेडीकेट' कर दी होती।

फिर उनका ध्यान इस ओर गया कि बाल-जती किशनदा का बुढ़ापा सुखी नहीं रहा। उसके तमाम साथियों ने हौज़ख़ास, ग्रीनपार्क, कैलाश कहीं-न-कहीं ज़मीन ली, मकान बनवाया, लेकिन उसने कभी इस ओर ध्यान ही नहीं दिया। रिटायर होने के छह महीने बाद जब उसे क्वार्टर खाली करना पड़ा तब, हद हो गई, उसके द्वारा उपकृत इतने सारे लोगों में से एक ने भी उसे अपने यहाँ रखने की पेशकश नहीं की। स्वयं यशोधर बाबू उसके सामने ऐसा कोई प्रस्ताव नहीं रख पाए क्योंकि उस समय तक उनकी शादी हो चुकी थी और उनके दो कमरों के क्वार्टर में तीन परिवार रहा करते थे। किशनदा कुछ साल राजेंद्र नगर में किराए का क्वार्टर लेकर रहा और फिर अपने गाँव लौट गया जहाँ साल भर बाद उसकी मृत्यु हो गई। ज़्यादा पेंशन खा नहीं सका बेचारा! विचित्र बात यह है कि उसे कोई भी बीमारी नहीं हुई। बस रिटायर होने के बाद मुरझाता-सूखता ही चला गया। जब उसके एक बिरादर से मृत्यु का कारण पूछा तब उसने यशोधर बाबू को यही जवाब दिया, "जो हुआ होगा।" यानी 'पता नहीं, क्या हुआ।'

जिन लोगों के बाल-बच्चे नहीं होते, घर परिवार नहीं होता उनकी रिटायर होने के बाद 'जो हुआ होगा' से भी मौत हो जाती है– यह जानते हैं यशोधर जी! बच्चों का होना भी ज़रूरी है। यह सही है कि यशोधर जी के बच्चे मनमानी कर रहे हैं और ऐसा संकेत दे रहे हैं कि उनके कारण यशोधर जी को बुढ़ापे में कोई विशेष सुख प्राप्त नहीं होगा लेकिन यशोधर जी

अपने मर्यादा पुरुष किशनदा से सुनी हुई यह बात नहीं भूले हैं कि गधा-पचीसी में कोई क्या करता है इसकी चिंता नहीं करनी चाहिए क्योंकि बाद में हर आदमी समझदार हो जाता है। यद्यपि युवा यशोधर को विश्वास नहीं होता तथापि किशनदा बताते हैं कि किस तरह मैंने जवानी में पचासों किस्म की खुराफ़ात की है। ककड़ी चुराना, गर्दन मोड़ के मुर्गी मार देना, पीछे की खिड़की से कूद कर सेकेंड शो सिनेमा देख आना–कौन करम ऐसा है जो तुम्हारे इस किशनदा ने नहीं कर रखा।

ज़िम्मेदारी सर पर पड़ेगी तब सब अपने ही आप ठीक हो जाएँगे, यह भी किशनदा से विरासत में मिला हुआ एक फ़िकरा है जिसे यशोधर बाबू अकसर अपने बच्चों के प्रसंग में दोहराते हैं। उन्हें कभी-कभी लगता है कि अगर मेरे पिता तब नहीं गुज़र गए होते जब मैं मैट्रिक में था तो शायद मैं भी गधा-पचीसी के लंबे दौर से गुज़रता। ज़िम्मेदारी सर पर जल्दी पड़ गई तो जल्दी ही ज़िम्मेदार आदमी भी बन गया। जब तक बाप है तब तक मौज कर ले। यह बात यशोधर जी कभी-कभी तंज़िया[1] कहते हैं। लेकिन कहते हुए उनके चेहरे पर जो मुसकान खेल जाती है वह बच्चों पर यह प्रकट करती है कि बाप को उनका सनाथ होना, गैर-ज़िम्मेदार होना, कुल मिलाकर अच्छा लगता है।

यशोधर बाबू कभी-कभी मन ही मन स्वीकार करते हैं कि दुनियादारी में बीवी-बच्चे उनके अधिक सुलझे हुए हो सकते हैं लेकिन दो के चार करने वाली दुनिया ही उन्हें कहाँ मंजूर है जो उसकी रीत मंजूर करें। दुनियादारी के हिसाब से बच्चों का यह कहना सही हो सकता है कि बब्बा ने डी.डी.ए. फ़्लैट के लिए पैसा न भर के भयंकर भूल की है किंतु 'समहाउ' यशोधर बाबू को किशनदा की यह उक्ति अब भी जँचती है–मूरख लोग मकान बनाते हैं, सयाने उनमें रहते हैं। जब तक सरकारी नौकरी तब तक सरकारी क्वार्टर। रिटायर होने पर गाँव का पुश्तैनी घर। बस!

1. व्यंग्यात्मक

गाँव का पुश्तैनी घर टूट-फूट चुका है और उस पर इतने लोगों का हक है कि वहाँ जाकर बसना, मरम्मत की ज़िम्मेदारी ओढ़ना और बेकार के झगड़े मोल लेना होगा–इस बात को यशोधर जी अच्छी तरह समझते हैं। बच्चे बहस में जब यह तर्क दोहराते हैं तब उनसे कोई जवाब देते नहीं बनता। उन्होंने हमेशा यही कल्पना की थी और आज भी करते हैं, कि उनका कोई लड़का रिटायर होने से पहले सरकारी नौकरी में आ जाएगा और क्वार्टर उनके परिवार के पास बना रह सकेगा। अब भी पत्नी द्वारा भविष्य का प्रश्न उठाए जाने पर यशोधर बाबू इस संभावना को रेखांकित कर देते हैं। जब पत्नी कहती है, 'अगर ऐसा नहीं हुआ तो? आदमी को तो हर तरह से सोचना चाहिए।' तब यशोधर बाबू टिप्पणी करते हैं कि सब तरह से सोचने वाले हमारी बिरादरी में नहीं होते हैं। उसमें तो एक की तरह से सोचने वाले होते हैं। कहते हैं और कहकर लगभग नकली-सी हँसी हँसते हैं।

जितना ही इस लोक की ज़िंदगी यशोधर बाबू को यह नकली हँसी हँसने के लिए बाध्य कर रही है उतना ही वह परलोक के बारे में उत्साही होने का यत्न कर रहे हैं। तो उन्होंने बिड़ला मंदिर की ओर तेज़ कदम बढ़ाए, लक्ष्मी-नारायण के आगे हाथ जोड़े, असीक का फूल[2] चुटिया में खोंसा और पीछे से उस प्रांगण में जा पहुँचे जहाँ एक महात्मा जी गीता पर प्रवचन कर रहे थे।

अफ़सोस, आज प्रवचन सुनने में यशोधर जी का मन खास लगा नहीं। सच तो यह है कि वह भीतर से बहुत ज़्यादा धार्मिक अथवा कर्मकांडी हैं नहीं। हाँ इस संबंध में अपने मर्यादा पुरुष किशनदा द्वारा स्थापित मानक हमेशा उनके सामने रहे हैं। जैसे-जैसे उम्र ढल रही है वैसे-वैसे वह भी किशनदा की तरह रोज़ मंदिर जाने, संध्या-पूजा करने और गीता प्रेस गोरखपुर की किताबें पढ़ने का यत्न करने लगे हैं। अगर कभी उनका मन शिकायत करता कि इस सब में लग नहीं पा रहा हूँ तब उससे कहते कि भाई लगना चाहिए। अब तो माया-मोह के साथ-साथ भगवत्-भजन को भी कुछ स्थान देना होगा कि नहीं? नयी पीढ़ी को देकर राजपाट तुम लग जाओ बाट वन-प्रदेश की। जो करते हैं, जैसा करते हैं, करें। हमें तो अब इस 'व-रल्ड' की नहीं, उसकी, इस 'लाइफ़' की नहीं, उसकी चिंता करनी है। वैसे अगर बच्चे सलाह माँगें, अनुभव का आदर करें तो अच्छा लगता है। अब नहीं माँगते तो न माँगें।

यशोधर बाबू ने फिर अपने को झिड़का कि यह भी क्या हुआ कि मन को समझाने में फिर भटक गए। गीता महिमा सुनो।

2. भगवान के चरणों से उठाए हुए आशीर्वाद के फूल

सुनने लगे मगर व्याख्या में जनार्दन शब्द जो सुनाई पड़ा तो उन्हें अपने जीजा जनार्दन जोशी की याद हो आई। परसों ही कार्ड आया है कि उनकी तबीयत खराब है। यशोधर बाबू सोचने लगे कि जीजाजी का हाल पूछने अहमदाबाद जाना ही होगा। ऐसा सोचते ही उन्हें यह भी खयाल आया कि यह प्रस्ताव उनकी पत्नी और बच्चों को पसंद नहीं आएगा, सारा संयुक्त परिवार बिखर गया है। पत्नी और बच्चों की धारणा है कि इस बिखरे परिवार के प्रति यशोधर जी का एकतरफ़ा लगाव आर्थिक दृष्टि से सर्वथा मूर्खतापूर्ण है। यशोधर जी खुशी-गम के हर मौके पर रिश्तेदारों के यहाँ जाना ज़रूरी समझते हैं। वह चाहते हैं कि बच्चे भी पारिवारिकता के प्रति उत्साही हों। बच्चे क्रुद्ध ही होते हैं। अभी उस दिन हद हो गई। कमाऊ बेटे ने यह कह दिया कि आपको बुआ को भेजने के लिए पैसे मैं तो नहीं दूँगा। यशोधर बाबू को कहना पड़ा कि अभी तुम्हारे बब्बा की इतनी साख है कि सौ रुपये उधार ले सकें।

यशोधर जी का नारा, 'हमारा तो सैप[3] ही ऐसा देखा ठहरा'–हमें तो यही परंपरा विरासत में मिली है। इस नारे से उनकी पत्नी बहुत चिढ़ती है। पत्नी का कहना है, और सही कहना है कि यशोधर जी का स्वयं का देखा हुआ कुछ नहीं है। माँ के मर जाने के बाद छोटी-सी उम्र में वह गाँव छोड़कर अपनी विधवा बुआ के पास अल्मोड़ा आ गए थे। बुआ का कोई ऐसा लंबा-चौड़ा परिवार तो था नहीं जहाँ कि यशोधर जी कुछ देखते और परंपरा के रंग में रंगते। मैट्रिक पास करते ही वह दिल्ली आ गए और यहाँ रहे कुँआरे कृष्णानंद जी के साथ। कुँआरे की गिरस्ती में देखने को होता क्या है? पत्नी आग्रहपूर्वक कहती है कि कुछ नहीं तुम अपने उन किशनदा के मुँह से सुनी-सुनाई बातों को अपनी आँखों देखी यादें बना डालते हो किशनदा को जो भी मालूम था। वह उनका पुराने गँवई लोगों से सीखा हुआ ठहरा। दिल्ली आकर उन्होंने घर-परिवार तो बसाया नहीं जो जान पाते कि कौन से रिवाज निभ सकते हैं, कौन से नहीं। पत्नी का कहना है कि किशनदा तो थे ही जनम के

3. साहब का बोलचाल में प्रयुक्त रूप

बूढ़े, तुम्हें क्या सुर लगा जो उनका बुढ़ापा खुद ओढ़ने लगे हो? तुम शुरू में तो ऐसे नहीं थे, शादी के बाद मैंने तुम्हें देख जो क्या नहीं रखा है! हफ़्ते में दो-दो सिनेमा देखते थे, गज़ल गाते थे गज़ल! गज़ल हुई और सहगल के गाने।

यशोधर बाबू स्वीकार करते हैं कि उनमें कुछ परिवर्तन हुआ है लेकिन वह समझते हैं कि उम्र के साथ-साथ बुज़ुर्गियत आना ठीक ही है। पत्नी से वह कहते हैं कि जिस तरह तुमने बुढ़याकाल यह बगैर बाँह का ब्लाउज पहनना, यह रसोई से बाहर दाल-भात खा लेना, यह ऊँची हील वाली सैंडल पहनना, और ऐसे ही पचासों काम अपनी बेटी की सलाह पर शुरू कर दिए हैं, मुझे तो वे 'समहाउ इंप्रॉपर' ही मालूम होते हैं। एनीवे मैं तुम्हें ऐसा करने से रोक नहीं रहा। देयरफोर तुम लोगों को भी मेरे जीने के ढंग पर कोई एतराज़ होना नहीं चाहिए।

यशोधर बाबू को धार्मिक प्रवचन सुनते हुए भी अपना पारिवारिक चिंतन में ध्यान डूबा रहना अच्छा नहीं लगा। सुबह-शाम संध्या करने के बाद जब वह थोड़ा ध्यान लगाने की कोशिश करते हैं तब भी मन किसी परम सत्ता में नहीं, इसी परिवार में लीन होता है। यशोधर जी चाहते हैं कि ध्यान लगाने की सही विधि सीखें तथा साथ ही वह अपने से भी कहते हैं कि परहैप्स ऐसी चीज़ के लिए रिटायर होने के बाद का समय ही प्रॉपर ठहरा। वानप्रस्थ के लिए प्रैसक्राइब्ड ठहरी ये चीज़ें। वानप्रस्थ के लिए यशोधर बाबू का अपने पुश्तैनी गाँव जाने का इरादा है रिटायर होकर। फार फ्राम द *मैडिंग क्राउड*–समझे!

इस तरह की तमाम बातें यशोधर बाबू पैदाइशी बुज़ुर्गवार किशनदा के शब्दों में और उनके ही लहजे में कहा करते हैं और कह कर उनकी तरह की वह झेंपी-सी लगभग नकली-सी हँसी हँस देते हैं। जब तक किशनदा दिल्ली में रहे यशोधर बाबू नित्य नियम से हर दूसरी शाम उनके दरबार में हाज़िरी लगाने पहुँचते रहे।

स्वयं किशनदा हर सुबह सैर से लौटते हुए अपने इस मानस पुत्र के क्वार्टर में झाँकना और 'हैल्दी-वैल्दी एंड वाइज़' बन रहा है न भाऊ–ऐसा कहना कभी नहीं भूलते। जब यशोधर बाबू दिल्ली आए थे तब उनकी सुबह थोड़ी देर से उठने की आदत थी। किशनदा ने उन्हें रोज़ सुबह झकझोर कर उठाना और साथ सैर में ले जाना शुरू किया और यह मंत्र दिया कि 'अरली टू बैड एंड अरली टू राइज मेक्स ए मैन हैल्दी एंड वाइज़!' जब यशोधर बाबू अलग क्वार्टर में रहने लगे और अपनी गृहस्थी में डूब गए तब भी किशनदा ने यह देखते रहना ज़रूरी समझा कि भाऊ यानी बच्चा सवेरे जल्दी उठता है कि नहीं? यशोधर बाबू को यह अच्छा लगता था कि कोई उन्हें भाऊ कहता है। हर सवेरे वह किशनदा से अनुरोध करते कि चाय पीकर जाए। किशनदा कभी-कभी इस अनुरोध की रक्षा कर देते। यशोधर बाबू ने

किशनदा को घर और दफ़्तर में विभिन्न रूपों में देखा है लेकिन किशनदा की जो छवि उनके मन में बसी हुई है वह सुबह की सैर को निकले किशनदा की ही है, कुर्ते-पजामे के ऊपर ऊनी गाउन पहने, सिर पर गोल विलायती टोपी और पाँवों में देशी खड़ाऊँ धारण किए हुए और हाथ में (कुत्तों को भगाने के लिए) एक छड़ी लिए हुए।

जब तक किशनदा दिल्ली में रहे तब तक यशोधर बाबू ने उनके पट्टशिष्य और उत्साही कार्यकर्ता की भूमिका पूरी निष्ठा से निभाई। किशनदा के चले जाने के बाद उन्होंने ही उनकी कई परंपराओं को जीवित रखने की कोशिश की और इस कोशिश में पत्नी और बच्चों को नाराज़ किया। घर में होली गवाना, 'जन्यो पुन्यूं' के दिन सब कुमाउँनियों को जनेऊ बदलने के लिए अपने घर आमंत्रित करना, रामलीला की तालीम के लिए क्वार्टर का एक कमरा दे देना–ये और ऐसे ही कई और काम यशोधर बाबू ने किशनदा से विरासत में लिए थे। उनकी पत्नी और बच्चों को इन आयोजनों पर होने वाला खर्च और इन आयोजनों में होने वाला शोर, दोनों ही सख्त नापसंद थे। बदतर यही कि इन आयोजनों के लिए समाज में भी कोई खास उत्साह रह नहीं गया है।

यशोधर जी चाहते हैं कि उन्हें समाज का सम्मानित बुज़ुर्ग माना जाए लेकिन जब समाज ही न हो तो यह पद उन्हें क्योंकर मिले? यशोधर जी कहते हैं कि बच्चे मेरा आदर करें और उसी तरह हर बात में मुझसे सलाह लें जिस तरह मैं किशनदा से लिया करता था। यशोधर बाबू डेमोक्रेट बाबू हैं और हरगिज़ यह दुराग्रह नहीं करना चाहते कि बच्चे उनके कहे को पत्थर की लकीर समझें। लेकिन यह भी क्या हुआ कि पूछा न ताछा, जिसके मन में जैसा आया करता रहा। ग्रांटेड तुम्हारी नॉलेज ज़्यादा होगी लेकिन एक्सपीरिएंस का कोई सबस्टीट्यूट ठहरा नहीं बेटा। मानो न मानो, झूठे मुँह से सही, एक बार पूछ तो लिया करो–ऐसा कहते हैं यशोधर बाबू और बच्चे यही उत्तर देते हैं, "बब्बा, आप तो हद करते हैं, जो बात आप जानते ही नहीं आपसे क्यों पूछें?"

प्रवचन सुनने के बाद यशोधर बाबू सब्ज़ीमंडी गए। यशोधर बाबू को अच्छा लगता अगर उनके बेटे बड़े होने पर अपनी तरफ़ से यह प्रस्ताव करते कि दूध लाना, राशन लाना, सी. जी. एच. एस. डिस्पेंसरी से दवा लाना, सदर बाज़ार जाकर दालें लाना, पहाड़गंज से सब्ज़ी लाना, डिपो से कोयला लाना ये सब काम आप छोड़ दें, अब हम कर दिया करेंगे, एकाध बार बेटों से खुद उन्होंने ही कहा तब वे एक-दूसरे से कहने लगे कि तू किया कर, तू क्यों नहीं करता? इतना कुहराम मचा और लड़कों ने एक-दूसरे को इतना ज़्यादा बुरा-भला कहा कि यशोधर बाबू ने इस विषय को उठाना भी बंद कर दिया। जब से बेटा विज्ञापन कंपनी में बड़ी नौकरी पर गया है तब से बच्चों का इस प्रसंग में एक ही वक्तव्य है-"बब्बा, हमारी समझ में नहीं आता कि इन कामों के लिए आप एक नौकर क्यों नहीं रख लेते? ईजा को भी आराम हो जाएगा।" कमाऊ बेटा नमक छिड़कते हुए यह भी कहता है कि नौकर की तनख्वाह मैं दे दूँगा।

यशोधर बाबू को यही 'समहाउ इंप्रापर' मालूम होता है कि उनका बेटा अपना वेतन उनके हाथ में नहीं रखे। यह सही है कि वेतन स्वयं बेटे के अपने हाथ में नहीं आता, एकाउंट ट्रांसफर द्वारा बैंक में जाता है। लेकिन क्या बेटा बाप के साथ ज्वाइंट एकाउंट नहीं खोल सकता था? झूठे मुँह से ही सही, एक बार ऐसा कहता तो! तिस पर बेटे का अपने वेतन को अपना समझते हुए बार-बार कहना कि यह काम मैं अपने पैसे से करने को कह रहा हूँ, आपके से नहीं जो आप नुक्ताचीनी करें। इस क्रम में बेटे ने पिता का यह क्वार्टर तक अपना बना लिया है। अपना वेतन अपने ढंग से वह इस घर पर खर्च कर रहा है। कभी कारपेट बिछवा रहा है, कभी पर्दे लगवा रहा है। कभी सोफ़ा आ रहा है कभी डनलपवाला डबल बैड और सिंगार मेज़। कभी टी. वी., कभी फ्रिज क्या हुआ यह? और ऐसा भी नहीं कहता कि लीजिए पिता जी मैं आपके लिए यह टी. वी. ले आया। कहता यही है कि मेरा टी. वी. है समझे, इसे कोई न छुआ करे! क्वार्टर ही उसका हो गया! यह अच्छी रही। अब इनका एक नौकर भी रखो घर में। इनका नौकर होगा तो इनके लिए ही होगा। हमारे लिए तो क्या होगा—ऐसा समझाते हैं यशोधर बाबू घरवाली को। काम सब अपने हाथ से ठीक ही होते हैं। नौकरों को सौंपा कारोबार चौपट हुआ। कहते हैं यशोधर बाबू, पत्नी सुनती है मगर नहीं सुनती। पर सुनकर अब चिढ़ती भी नहीं।

सब्ज़ी का झोला लेकर यशोधर बाबू खुदी हुई सड़कों और टूटे हुए क्वार्टरों के मलबे से पटे हुए लानों को पार करके स्क्वायर के उस कोने में पहुँचे जिसमें तीन क्वार्टर अब भी साबुत खड़े हुए थे। उन तीन में से कुल एक को अब तक एक सिलसिला आबाद किए हुए है। बाहर बदरंग तख्ती में उसका नाम लिखा है—वाई.डी. पंत।

इस क्वार्टर के पास पहुँचकर आज वाई.डी. पंत को पहले धोखा हुआ कि किसी गलत जगह आ गए हैं। क्वार्टर के बाहर एक कार थी, कुछ स्कूटर-मोटर साइकिल, बहुत से लोग विदा ले-दे रहे थे। बाहर बरामदे में रंगीन कागज़ की झालरें और गुब्बारे लटके हुए थे और रंग-बिरंगी रोशनियाँ जली हुई थीं।

फिर उन्हें अपना बड़ा बेटा भूषण पहचान में आया जिससे कार में बैठा हुआ कोई साहब हाथ मिला रहा था और कह रहा था, "गिव माई वार्म रिगार्ड्स टू योर फ़ादर।"

यशोधर बाबू ठिठक गए। उन्होंने अपने से पूछा—क्यों, आज मेरे क्वार्टर में यह क्या हो रहा होगा? उसका जवाब भी उन्होंने अपने को दिया—जो करते होंगे यह लौंडे-मौंडे, इनकी माया यही जानें।

अब यशोधर बाबू का ध्यान इस ओर गया कि उनकी पत्नी और उनकी बेटी भी कुछ मेमसाबों को विदा करते हुए बरामदे में खड़ी हैं, लड़की जीन और बगैर बाँह का टाप पहने है। यशोधर बाबू उससे कई मर्तबा कह चुके हैं कि तुम्हारी यह पतलून और सैंडो बनने वाली ड्रैस मुझे तो समहाउ इंप्रापर मालूम होती है। लेकिन वह भी ज़िद्दी ऐसी है कि इसे ही पहनती है और पत्नी भी उसी की तरफ़दारी करती है, कहती है—वह सिर पर पल्लू-वल्लू मैंने कर लिया बहुत तुम्हारे कहने पर समझे, मेरी बेटी वही करेगी जो दुनिया कर रही है। पुत्री का पक्ष लेने वाली यह पत्नी इस समय ओठों पर लाली और बालों पर खिज़ाब लगाए हुए थी जबकि ये दोनों ही चीज़ें आप कुछ भी कहिए, यशोधर बाबू को 'समहाउ इंप्रापर' ही मालूम होती हैं।

आधुनिक किस्म के अजनबी लोगों की भीड़ देखकर यशोधर बाबू अँधेरे में ही दुबके रहे। उनके बच्चों को इसलिए शिकायत है कि बब्बा तो एल.डी.सी. टाइपों से ही मिक्स करते हैं।

जब कार वाले लोग चले गए तब यशोधर बाबू ने अपने क्वार्टर में कदम रखने का साहस जुटाया। भीतर अब भी पार्टी चल रही थी। उनके पुत्र-पुत्रियों के कई मित्र तथा उनके कुछ रिश्तेदार जमे हुए थे।

उनके बड़े बेटे ने झिड़की-सी सुनाई, "बब्बा, आप भी हद करते हैं। सिल्वर वैडिंग के दिन साढ़े आठ बजे घर पहुँचे हैं। अभी तक मेरे बॉस आपकी राह देख रहे थे।"

"हम लोगों के यहाँ सिल्वर वैडिंग कब से होने लगी है।" यशोधर बाबू ने शर्मीली हँसी हँस दी।

"जब से तुम्हारा बेटा डेढ़ हज़ार माहवार कमाने लगा, तब से।" यह टिप्पणी थी चंद्रदत्त तिवारी की जो इसी साल एस.ए.एस. पास हुआ है और दूर के रिश्ते से यशोधर बाबू का भांजा लगता है।

यशोधर बाबू को अपने बेटों से तमाम तरह की शिकायतें हैं लेकिन कुल मिलाकर उन्हें यह अच्छा लगता है कि लोग–बाग उन्हें ईर्ष्या का पात्र समझते हैं। भले ही उन्हें भूषण का गैर–सरकारी नौकरी करना समझ में न आता हो तथापि वह यह बखूबी समझते हैं कि इतनी

छोटी उम्र में डेढ़ हज़ार माहवार प्लस कनवेएंस एलाउंस एंड तुम्हारा अदर पर्क्स पा जाना कोई मामूली बात नहीं है। इसी तरह भले ही यशोधर बाबू ने बेटों की खरीदी हुई हर नयी चीज़ के संदर्भ में यही टिप्पणी की हो कि ये क्या हुई, समहाउ मेरी तो समझ में आता नहीं, इसकी क्या ज़रूरत थी, तथापि उन्हें कहीं इस बात से थोड़ी खुशी भी होती है कि इस चीज़ के आ जाने से उन्हें नए दौर के, निश्चय ही गलत, मानकों के अनुसार बड़ा आदमी मान लिया जा रहा है। मिसाल के लिए जब बेटों ने गैस का चूल्हा जुटाया तब यशोधर बाबू ने उसका विरोध किया और आज भी वह यही कहते हैं कि इस पर बनी रोटी मुझे तो समहाउ रोटी जैसी लगती नहीं, तथापि वह जानते हैं, गैस न होने पर वह इस नगर में चपरासी श्रेणी के मान लिए जाते। इसी तरह फ्रिज के संदर्भ में आज भी यशोधर बाबू यही कहते हैं कि मेरी समझ में आज तक यह नहीं आया कि इसका फ़ायदा क्या है? बासी खाना खाना अच्छी आदत नहीं ठहरी। और यह ठहरा इसी काम का कि सुबह बना के रख दिया और शाम को खाया। इस में रखा हुआ पानी भी मेरे मन तो आता नहीं, गला पकड़ लेता है। कहते हैं मगर इस बात से संतुष्ट होते हैं कि घर आए साधारण हैसियत वाले मेहमान इस फ्रिज का पानी पीकर अपने को धन्य अनुभव करते हैं।

अपनी सिल्वर वैडिंग की यह भव्य पार्टी भी यशोधर बाबू को समहाउ इंप्रापर ही लगी तथापि उन्हें इस बात से संतोष हुआ कि जिस अनाथ यशोधर के जन्मदिन पर कभी लड्डू नहीं आए, जिसने अपना विवाह भी कोऑपरेटिव से दो-चार हज़ार कर्ज़ा निकालकर किया बगैर किसी खास धूमधाम के, उसके विवाह की पच्चीसवीं वर्षगाँठ पर केक, चार तरह की मिठाई, चार तरह की नमकीन, फल, कोल्डड्रिंक्स, चाय सब कुछ मौजूद है।

गिरीश बोला, मुझे आज सुबह बैठे-बैठे याद आया कि आपकी शादी छह फ़रवरी सन् सैंतालीस को हुई थी और इस हिसाब से आज उसे पच्चीस साल पूरे हो गए हैं। मैंने आपके दफ़्तर फ़ोन

किया लेकिन शायद आपका फ़ोन खराब था। तब मैंने भूषण को फ़ोन किया। भूषण ने कहा, शाम को आ जाइए पार्टी करते हैं। मैं अपने बॉस को भी बुला लूँगा इसी बहाने।"

गिरीश यशोधर बाबू की पत्नी का चचेरा भाई है। बड़ी कंपनी में मार्केटिंग मैनेजर है और इसकी सहायता से ही यशोधर बाबू के बेटे को अपना यह संपन्न साला समहाउ भयंकर ओछाट यानी ओछेपन का धनी मालूम होता है। उन्हें लगता है कि इसी ने भूषण को बिगाड़ दिया है। कभी कहते हैं ऐसा तो पत्नी बरस पड़ती है—ज़िंदगी बना दी तुम्हारे सेकेंड क्लास बी.ए. बेटे की, कहते हो बिगाड़ दिया।

भूषण ने अपने मित्रों-सहयोगियों का यशोधर बाबू से परिचय कराना शुरू किया। उनकी "मैनी हैप्पी रिटर्न्स ऑफ़ द डे" का "थैंक्यू" कहकर जवाब देते हुए, जिन लोगों का नाम पहले बता दिया गया हो उनकी ओर "वाई.डी. पंत, होम मिनिस्ट्री, भूषण्स फ़ादर" कहकर स्वयं हाथ बढ़ाते हुए यशोधर बाबू ने हरचंद यह जताने की कोशिश की कि भले ही वह संस्कारी कुमाऊँनी है तथापि विलायती रीति-रिवाज से भी भली भाँति परिचित हैं। किशनदा कहा करते थे कि आना सब कुछ चाहिए, सीखना हर एक की बात ठहरी, लेकिन अपनी छोड़नी नहीं हुई। टाई-सूट पहनना आना चाहिए लेकिन धोती-कुर्ता अपनी पोशाक है यह नहीं भूलना चाहिए।

अब बच्चों ने एक और विलायती परंपरा के लिए आग्रह किया—यशोधर बाबू अपनी पत्नी के साथ केक काटें। घरवाली पहले थोड़ा शरमाई लेकिन जब बेटी ने हाथ खींचा तब उसे केक के पीछे जा खड़ी होने में कोई हिचक नहीं हुई, वहीं से उसने पति को भी पुकारा।

यशोधर बाबू को केक काटना बचकानी बात मालूम हुई। बेटी उन्हें लगभग खींचकर ले गई। यशोधर बाबू ने कहा, "समहाउ आई डोंट लाइक आल दिस।" लेकिन एनीवे उन्होंने केक काट ही दिया। गिरीश ने उनकी यह अनमनी किंतु संतुष्ट छवि कैमरे में कैद कर ली। अब पति-पत्नी से कहा गया कि वे केक से मुँह मीठा करें एक-दूसरे का। पत्नी ने खा लिया मगर यशोधर बाबू ने इंकार कर दिया। उनका कहना था कि मैं केक खाता नहीं, इसमें अंडा पड़ा होता है। उन्हें याद दिलाया गया कि अभी कुछ वर्षों पहले तक आप मांसाहारी थे, एक टुकड़ा केक खा लेने में क्या हो जाएगा? लेकिन वह नहीं माने। तब उनसे अनुरोध किया गया कि लड्डू ही खा लें। भूषण के एक मित्र ने लड्डू उठाकर उनके मुँह में ठूँसने का यत्न किया लेकिन यशोधर बाबू इसके लिए भी राज़ी नहीं हुए। उनका कहना था कि मैंने अब तक संध्या नहीं की है। इस पर भूषण ने झुँझलाकर कहा, "तो बब्बा, पहले जाकर संध्या कीजिए, आपकी वजह से हम लोग कब तक रुके रहेंगे।"

"नहीं, नहीं, आप सब लोग खाइए," यशोधर बाबू ने बच्चों के दोस्तों से कहा, "प्लीज़ गो अहेड। नो फ़ारमैल्टी।"

यशोधर बाबू ने आज पूजा में कुछ ज़्यादा ही देर लगाई। इतनी देर कि ज़्यादातर मेहमान उठ कर चले जाएँ।

उनकी पत्नी, उनके बच्चे, बारी-बारी से आकर झाँकते रहे और कहते रहे, जल्दी कीजिए मेहमान लोग जा रहे हैं।

शाम की पंद्रह मिनट की पूजा को लगभग पच्चीस मिनट तक खींच लेने के बाद भी जब बैठक से मेहमानों की आवाज़ें आती सुनाई दी तब यशोधर बाबू पद्मासन साधकर ध्यान लगाने बैठ गए, वह चाहते थे कि उन्हें प्रकाश का एक नीला बिंदु दिखाई दे, मगर उन्हें किशनदा दिखाई दे रहे थे।

यशोधर बाबू किशनदा से पूछ रहे थे कि 'जो हुआ होगा' से आप कैसे मर गए? किशनदा कह रहे थे कि भाऊ सभी जन इसी 'जो हुआ होगा' से मरते हैं, गृहस्थ हों, ब्रह्मचारी हों, अमीर हों, गरीब हों, मरते 'जो हुआ होगा' से ही हैं। हाँ-हाँ, शुरू में और आखिर में, सब अकेले ही होते हैं। अपना कोई नहीं ठहरा दुनिया में, बस अपना नियम अपना हुआ।

यशोधर बाबू ने पाजामा-कुर्ते पर ऊनी ड्रेसिंग गाउन पहने, सिर पर गोल विलायती टोपी, पाँवों में देशी खड़ाऊँ और हाथ में डंडा धारण किए इस किशनदा से अकेलेपन के विषय में बहस करनी चाही। उनका विरोध करने के लिए नहीं बल्कि बात कुछ और अच्छी तरह समझने के लिए।

हर रविवार किशनदा शाम को ठीक चार बजे यशोधर बाबू के घर आया करते थे। उनके लिए गरमा-गरम चाय बनवाई जाती थी। उनका कहना था कि जिसे फूँक मारकर न पीना पड़े वह चाय कैसी। चाय सुड़कते हुए किशनदा प्रवचन करते थे और यशोधर बाबू बीच-बीच में शंकाएँ उठाते थे।

यशोधर बाबू को लगता है कि किशनदा आज भी मेरा मार्ग-दर्शन कर सकेंगे और बता सकेंगे कि मेरे बीवी-बच्चे जो कुछ भी कर रहे हैं उसके विषय में मेरा रवैया क्या होना चाहिए?

लेकिन किशनदा तो वही अकेलेपन का खटराग अलापने पर आमादा से मालूम होते हैं।

कैसी बीवी, कहाँ के बच्चे, यह सब माया ठहरी और यह जो भूषण आज इतना उछल रहा है वह भी किसी दिन इतना ही अकेला और असहाय अनुभव करेगा, जितना कि आज तू कर रहा है।

यशोधर बाबू बात आगे बढ़ाते लेकिन उनकी घरवाली उन्हें झिड़कते हुए आ पहुँची कि क्या आज पूजा में ही बैठे रहोगे। यशोधर बाबू आसन से उठे और उन्होंने दबे स्वर में पूछा, "मेहमान गए?" पत्नी ने बताया, "कुछ गए हैं, कुछ हैं। उन्होंने जानना चाहा कि कौन-कौन हैं? आश्वस्त होने पर कि सभी रिश्तेदार ही हैं वह उसी लाल गमछे में बैठक में चले गए जिसे पहनकर वह संध्या करने बैठे थे। यह गमछा पहनने की आदत भी उन्हें किशनदा से विरासत में मिली है और उनके बच्चे इसके सख्त खिलाफ़ हैं।

"एवरीबडी गॉन, पार्टी ओवर?" यशोधर बाबू ने मुसकुराकर अपनी बेटी से पूछा, "अब गोया गमछा पहने रखा जा सकता है?"

उनकी बेटी झल्लाई, "लोग चले गए, इसका मतलब यह थोड़ी है कि आप गमछा पहनकर बैठक में आ जाएँ। बब्बा, यू आर द लिमिट।"

"बेटी, हमें जिसमें सज आएगी वही करेंगे ना, तुम्हारी तरह जीन पहनकर हमें तो सज आती–नहीं।"

यशोधर बाबू की दृष्टि मेज़ पर रखे कुछ पैकेटों पर पड़ी। बोले, "ये कौन भूले जा रहा है?"

भूषण बोला, "आपके लिए प्रेज़ेंट हैं, खोलिए ना।"

"अह, इस उम्र में क्या हो रहा है प्रेज़ेंट-वरजैंट! तुम खोलो, तुम्हीं इस्तेमाल करो।" कहकर शर्मीली हँसी हँसे।

भूषण सबसे बड़ा पैकेट उठाकर उसे खोलते हुए बोला, "इसे तो ले लीजिए। यह मैं आपके लिए लाया हूँ। ऊनी ड्रेसिंग गाउन है। आप सवेरे जब दूध लेने जाते हैं बब्बा, फटा पुलोवर पहन के चले जाते हैं जो बहुत ही बुरा लगता है। आप इसे पहन के जाया कीजिए।"

बेटी पिता का पाजामा-कुर्ता उठा लाई कि इसे पहनकर गाउन पहनें। थोड़ा-सा ना-नुच करने के बाद यशोधर जी ने इस आग्रह की रक्षा की। गाउन का सैश कसते हुए उन्होंने कहा, "अच्छा तो यह ठहरा ड्रेसिंग गाउन।"

उन्होंने कहा और उनकी आँखों की कोर में ज़रा-सी नमी चमक गई।

यह कहना मुश्किल है कि इस घड़ी उन्हें यह बात चुभ गई कि उनका जो बेटा यह कह रहा है कि आप सवेरे ड्रेसिंग गाउन पहनकर दूध लाने जाया करें, वह यह नहीं कह रहा कि दूध मैं ला दिया करूँगा या कि इस गाउन को पहनकर उनके अंगो में वह किशनदा उतर आया है जिसकी मौत 'जो हुआ होगा' से हुई।

अभ्यास

1. यशोधर बाबू की पत्नी समय के साथ ढल सकने में सफल होती है लेकिन यशोधर बाबू असफल रहते हैं। ऐसा क्यों?
2. पाठ में 'जो हुआ होगा' वाक्य की आप कितनी अर्थ छवियाँ खोज सकते / सकती हैं?
3. 'समहाउ इंप्रापर' वाक्यांश का प्रयोग यशोधर बाबू लगभग हर वाक्य के प्रारंभ में **तकिया कलाम** की तरह करते हैं। इस वाक्यांश का उनके व्यक्तित्व और कहानी के कथ्य से क्या संबंध बनता है?
4. यशोधर बाबू की कहानी को दिशा देने में किशनदा की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। आपके जीवन को दिशा देने में किसका महत्त्वपूर्ण योगदान रहा और कैसे?
5. वर्तमान समय में परिवार की संरचना, स्वरूप से जुड़े आपके अनुभव इस कहानी से कहाँ तक सामंजस्य बिठा पाते हैं?
6. निम्नलिखित में से किसे आप कहानी की मूल संवेदना कहेंगे / कहेंगी और क्यों?

   (क) हाशिए पर धकेले जाते मानवीय मूल्य

   (ख) पीढ़ी का अंतराल

   (ग) पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव
7. अपने घर और विद्यालय के आस-पास हो रहे उन बदलावों के बारे में लिखें जो सुविधाजनक और आधुनिक होते हुए भी बुज़ुर्गों को अच्छे नहीं लगते। अच्छा न लगने के क्या कारण होंगे?
8. यशोधर बाबू के बारे में आपकी क्या धारणा बनती है? दिए गए तीन कथनों में से आप जिसके समर्थन में हैं, अपने अनुभवों और सोच के आधार पर उसके लिए तर्क दीजिए–

   (क) यशोधर बाबू के विचार पूरी तरह से पुराने हैं और वे सहानुभूति के पात्र नहीं हैं।

   (ख) यशोधर बाबू में एक तरह का द्वंद्व है जिसके कारण नया उन्हें कभी-कभी खींचता तो है पर पुराना छोड़ता नहीं। इसलिए उन्हें सहानुभूति के साथ देखने की ज़रूरत है।

   (ग) यशोधर बाबू एक आदर्श व्यक्तित्व है और नयी पीढ़ी द्वारा उनके विचारों का अपनाना ही उचित है।

2

आनंद यादव

जूझ

पाठशाला जाने के लिए मन तड़पता था। लेकिन दादा के सामने खड़े होकर यह कहने की हिम्मत नहीं होती कि, "मैं पढ़ने जाऊँगा।" डर लगता था कि हड्डी-पसली एक कर देगा। इसलिए मैं इस ताक में रहता कि कोई दादा को समझा दे। मुझे इसका विश्वास था कि जन्म-भर खेत में काम करते रहने पर भी हाथ कुछ नहीं लगेगा। जो बाबा के समय था, वह दादा के समय नहीं रहा। यह खेती हमें गड्ढे में धकेल रही है। पढ़ जाऊँगा तो नौकरी लग जाएगी, चार पैसे हाथ में रहेंगे, विठोबा आण्णा की तरह कुछ धंधा कारोबार किया जा सकेगा।' अंदर-ही-अंदर इस तरह के विचार चलते रहते।

दीवाली बीत जाने पर महीना-भर ईख पेरने का कोल्हू चलाना होता। कोल्हू ज़रा जल्दी शुरू किया तो दादा की समझ से ईख की अच्छी-खासी कीमत मिल जाती। यह उसकी समझ कुछ हद तक सही थी। जब चारों ओर कोल्हू चलने लगते तो बाज़ार में गुड़ की बहुतायत हो जाती और भाव नीचे उतर आते। उस समय नंबर एक और नंबर दो का गुड़ बहुत आता और हमारे जैसे खेतों पर ही बनाए गए नंबर तीन के गुड़ को कौन पूछता। बाकी के किसान दूसरे ढंग से विचार करते थे। उनका मत था कि यदि ईख को और कुछ दिन खेत में खड़ी रहने दिया गया तो गुड़ ज़रा ज़्यादा निकलता है। देर तक खड़ी रहने वाली ईख के रस में पानी की मात्रा कम होती है और रस गाढ़ा हो जाता है जिसके कारण ज़्यादा गुड़ निकलता है। लेकिन दादा की समझ से गुड़ ज़्यादा निकलने की अपेक्षा भाव ज़्यादा मिलना चाहिए। इसलिए सारे गाँव भर में हमारा कोल्हू सबसे पहले शुरू होता था।

इसी कारण वह इस वर्ष भी शुरू हुआ और हम उससे जल्दी निपट गए। आगे के काम में लग गए।

सभी जन धूप में लेटे हुए थे। माँ धूप में कंडे थाप रही थी–मैं बाल्टी में पानी भर-भरकर उसे दे रहा था। कुछ-न-कुछ बातचीत भी कर रहे थे। हम दोनों ही थे इसलिए यह सोचकर कि बात माँ से कहनी चाहिए और मैंने अपने पढ़ने की बात छेड़ दी।

माँ ने कहा, "अब तू ही बता, मैं का करूँ?" पढ़ने-लिखने की बात की तो वह बरहेला सूअर की तरह गुर्राता है। तुझे मालूम है।"...माँ के मन में जंगली सूअर बहुत गहराई में बैठा हुआ था।

"अब मळा (खेती) के सभी काम बीत गए हैं। मेरे लिए अब कुछ तो करना नहीं रह गया है। इसलिए कहता हूँ; तू दत्ता जी राव सरकार से मेरे पढ़ने के बारे में कह। आज ही रात को उनके यहाँ चलेंगे। मैं चलूँगा तेरे साथ। तू उन्हें सब कुछ समझाकर बता दे। तो वे दादा को ठीक तरह से समझा सकेंगे।"

"ठीक है चलेंगे।" माँ ने हाँ तो की लेकिन अंदर से माँ के स्वर में उदासी थी। मुझे भी मालूम था कि इतना करने पर भी कोई लाभ नहीं होगा। लेकिन वह मेरा मन रखने के लिए जाने को तैयार हो गई। मेरी तड़पन वह समझती थी। सातवीं तक पढ़ाने की उसके मन में तैयारी थी। लेकिन दादा के आगे उसका बस नहीं चलता था।

रात को मैं और माँ दत्ता जी राव देसाई के यहाँ गए। माँ ने दीवार के सहारे बैठकर दत्ता जी राव से सब कुछ कह दिया। वे भी इस बात से सहमत हो गए। माँ ने यह भी बताया कि दादा सारे दिन बाज़ार में रखमाबाई के पास गुज़ार देता है। खेती के काम में हाथ नहीं लगाता है। माँ ने देसाई को यह विश्वास दिला दिया कि दादा को सारे गाँव भर आज़ादी के साथ घूमने को मिलता रहे, इसलिए उसने मेरा पढ़ना बंद कर मुझे खेती में जोत दिया है। यह सुनते ही देसाई दादा चिढ़ गए और बोले, "आने दे अब उसे, मैं उसे सुनाता हूँ कि नहीं अच्छी तरह, देख।"

उठते-उठते मैंने भी दत्ता जी राव से कहा, "अब जनवरी का महीना है। अब परीक्षा नज़दीक आ गई है। मैं यदि अभी भी कक्षा में जाकर बैठ गया और पढ़ाई की दुहराई कर ली तो दो महीने में पाँचवीं की सारी तैयारी हो जाएगी और मैं परीक्षा में पास हो जाऊँगा। इस तरह मेरा साल बच जाएगा। अब खेती में ऐसा कुछ काम नहीं है। मेरा पहले ही एक वर्ष बेकार में चला गया है।"

"ठीक है, ठीक है। अब तुम दोनों अपने घर जाओ–जब वह आ जाए तो मेरे पास भेज देना और उसके पीछे से घड़ी भर बाद में तू भी आ जाना रे छोरा।"

"जी!" कहकर हम खड़े हो गए। उठते-उठते हमने यह भी कहा कि "हमने यहाँ आकर ये सभी बातें कही हैं, यह मत बता देना, नहीं तो हम दोनों की खैर नहीं है। माँ अकेली साग-भाजी देने आई थी। यह बता देंगे तो अच्छा होगा।"

"ठीक है, ठीक है। मुझे जो करना है मैं करूँगा। देख, उसके सामने ही तुझसे कुछ पूछूँगा तो निडर होकर साफ़-साफ़ उत्तर देना। डरना मत।"

"नहीं जी।"

मैं माँ के साथ लौट आया। एक घंटा रात बीते दादा घर पर आया। मैं घर में ही था।

आते ही माँ ने दादा से कहा, "साग-भाजी देने देसाई सरकार के यहाँ गई थी तो उन्होंने कहा कि बहुत दिनों से तेरा मालिक दिखाई नहीं दिया है। खेत से आ जाने पर ज़रा इधर भेज देना।"

"कुछ काम-वाम था?" दादा ने अधीरता से पूछा।

"मुझे तो कुछ बताया नहीं उन्होंने।"

"तो मैं हो आता हूँ। तब तक तू रोटियाँ सेंक ले। गणपा आए तो उसे खेतों पर भेज देना पहले ही।"

दादा तुरंत उठ खड़ा हुआ। देसाई के बाड़े का बुलावा दादा के लिए सम्मान की बात थी।

आधा घंटा बीतने पर माँ ने मुझसे कहा कि "अब तू जा, कहना जीमने[1] बुलाया है।"

"अच्छा।"

मैं पहुँचा तो सरकार मेरी राह देख रहे थे।

"क्यों आया रे छोरे?"

"दादा को बुलाने आया हूँ, अभी खाना नहीं खाया है।"

"बैठ, बैठ थोड़ी देर। अभी तो आया है वह मेरे पास।"

"जी," मैं बैठ गया।

धीरे-धीरे दत्ता जी राव पूछने लगे, "कौन-सी में पढ़ता है रे तू?"

"जी, पाँचवीं में था किंतु अब नहीं जाता हूँ।"

"क्यों रे?"

"दादा ने मना कर दिया है। खेतों में पानी लगाने वाला कोई नहीं है।"

"क्यों रतनाप्पा?"

"हाँ जी!"

"फिर तू क्या करता है?" सरकार ने दादा से जिरह करना शुरू किया तो सारा इतिहास बाहर निकल आया। सरकार ने दादा पर खूब गुस्सा किया। उन्होंने दादा की खूब हजामत

1. भोजन ग्रहण करना

बनाई। देसाई के मळा (खेत) को छोड़ देने के बाद दादा का ध्यान किस तरह काम की तरफ़ नहीं रहा। मन लगाकर वह खेत में किस तरह श्रम नहीं करता है; फ़सल में लागत नहीं लगाता है, लुगाई और बच्चों को काम में जोतकर किस तरह खुद गाँव भर में खुले साँड़ की तरह घूमता है और अब अपनी मस्ती के लिए किस तरह छोरा के जीवन की बलि चढ़ा रहा है। यह सब उन्होंने सुनाया।

दादा के हरेक तर्क को दत्ता जी राव ने काट दिया और मुझसे कहा, "सवेरे से तू पाठशाला जाता रह, कुछ भी हो, पूरी फ़ीस भर दे उस मास्टर की। और मन लगाकर पढ़ाई कर और किसी भी तरह साल नहीं मारा जाए, इसका ध्यान रख। यदि इसने तुझे पढ़ने नहीं भेजा तो सीधा चला आ इधर। सुबह-शाम जो हो सके, वह काम कर यहाँ और पाठशाला जाते रहना। मैं पढ़ाऊँगा तुझे। इसके पास ज़रा ज़्यादा बच्चे हो गए हैं इसलिए तुम्हारे साथ कुत्तों की तरह बर्ताव करता है।"

"मैंने मना कब किया है जी? इसको ज़रा गलत-सलत आदत पड़ गई थी इसलिए पाठशाला से निकालकर ज़रा नज़रों के सामने रख लिया है।"

"कैसी आदतें?"

"चाहे जैसी। यहाँ-वहाँ कुछ भी करता है। कभी कंडे बेचता, कभी चारा बेचता, सिनेमा देखता, कभी खेलने जाता। खेती और घर के काम में इसका बिलकुल ध्यान नहीं है।" दादा ने मेरे ऊपर अचानक हल्ला बोल दिया।

"क्यों रे छोकरे?"

"नहीं जी! कभी एक बार मेले में पटा पर पैसे लगा दिए थे। दादा तो कभी भी सिनेमा के लिए पैसे नहीं देते हैं। इसलिए खेत पर गोबर बीन-बीनकर माँ से कंडे थपवा लिए थे और उन्हें बेचकर ही कपड़े भी बनवाए थे। उसी समय एक बार सिनेमा भी गया था।" मैंने भी झूठ-सच मिलाकर ठोंक दिया।

"अब यह सब बंद कर और सिर्फ़ पढ़ाई में मन लगा। ना पास नहीं हुआ है कभी?"

"नहीं जी। पाठशाला जाना ही बंद करा दिया इसलिए परीक्षा में नहीं बैठा हूँ।"

"अच्छा-अच्छा। अब तू घर जा और सवेरे से पाठशाला जाने लग।"

"जी।" मैं उठ खड़ा हुआ। बाहर निकलते-निकलते मैंने सुना, "अरे, बच्चे की जात है। एकाध वक्त सिनेमा चला गया तो क्या हुआ? एकाध बार खेलने में लग गया तो क्या हुआ? इस बात पर उसका पढ़ना-लिखना बंद कर देना है क्या?"

"जी।" आप कहते हैं तो भेज देता हूँ कल से। देखते हैं एकाध वर्ष में कुछ सुधार हो जाए तो।" दादा ने मन मारकर कहा। इस समय उसका कोई बस नहीं चला था।

खाना खाते-खाते दादा ने मुझसे वचन ले लिया। पाठशाला ग्यारह बजे होती है। दिन निकलते ही खेत पर हाज़िर होना चाहिए। ग्यारह बजे तक पानी लगाना चाहिए। खेत पर से सीधे पाठशाला पहुँचना। सवेरे आते समय ही पढ़ने का बस्ता घर से ले आना। छुट्टी होते ही

घर में बस्ता रखकर सीधे खेत पर आकर घंटा भर ढोर चराना और कभी खेतों में ज़्यादा काम हुआ तो पाठशाला में गैर-हाज़िरी लगाना. ..समझे! मंज़ूर है का?"

"हाँऽ। खेत में काम होगा तो गैरहाज़िर रहना ही चाहिए।" मैं ऐसे बोल रहा था मानो मुझे सारी बातें मंज़ूर हैं। मन आनंद से उमड़ रहा था।

"हाँऽ, इतना मंज़ूर हो तो पाठशाला जाना। नहीं तो यह पढ़ना-लिखना किस काम का?"

"मैं सवेरे-शाम खेतों पर आता रहूँगा न।"

"हाँ, यदि नहीं आया किसी दिन तो देख गाँव में जहाँ मिलेगा वहीं कुचलता हूँ कि नहीं-तुझे। तेरे ऊपर पढ़ने का भूत सवार हुआ है। मुझे मालूम है, बालिस्टर नहीं होनेवाला है तू?" दादा बार-बार कुर-कुर कर रहा था-मैं चुपचाप गरदन नीची करके खाने लगा था।

रोते-धोते पाठशाला फिर से शुरू हो गई। गरमी-सरदी, हवा-पानी, वर्षा, भूख-प्यास आदि का कुछ भी खयाल न करते हुए खेती के काम की चक्की में, ग्यारह से पाँच बजे तक पिसते रहने से छुटकारा मिल गया। उस चक्की की अपेक्षा मास्टर की छड़ी की मार अच्छी लगती थी। उसे मैं मज़े से सहन कर लेता था।

दोपहरी-भर की कड़क धूप का समय पाठशाला की छाया में व्यतीत हो रहा था-गरमी के दो महीने आनंद में बीत गए।

फिर से पाँचवीं में जाकर बैठने लगा। फिर से नाम लिखवाने की ज़रूरत नहीं पड़ी। 'पाँचवीं नापास' की टिप्पणी नाम के आगे लिखी हुई थी। वह पाँचवीं के ही हाज़िरी रजिस्टर में लिखा रह गया था। पहले दिन कक्षा में गया तो गली के दो लड़कों को छोड़कर कोई भी पहचान का नहीं था। मेरे साथ के सभी लड़के आगे चले गए थे। मेरी अपेक्षा कम उम्र के और मैं जिन्हें कम अकल का समझता था, उन्हीं के साथ अब बैठना पड़ेगा, यह बात कक्षा में पहुँचने पर समझ में आई। मन खट्टा हो गया। बाहरी-अपरिचित जैसा एक बेंच के एक

सिरे पर कोने में जा बैठा। मास्टर कौन है, इसका पता नहीं था। पुरानी किताबों और पुरानी कापियों का उस कक्षा से कोई संबंध नहीं था– फिर भी लट्ठे के बने थैले में उन्हें ले आया था। बस अड्डे पर कोई लड़का अपनी पोटली सँभाले किसी इंतज़ार में जैसे बैठा होता है, उसी तरह मैं अपनी पढ़ाई की पुरानी धरोहर सँभाले बैठा था।

"क्या नाम है मेहमान? नया दिखाई देता है। या गलती से इस कक्षा में आ बैठे हो?" कक्षा के सबसे ज़्यादा शरारती चह्वाण के लड़के ने सामने आकर खिल्ली उड़ाने के स्वर में पूछा। मेरे ध्यान में आया कि मेरी पोशाक भी अजनबी जैसी है। बालुगड़ी की लाल माटी के रंग में मटमैली हुई धोती और गमछा पहनकर मैं अकेला ही था।

"देखें-देखें तुम्हारा गमछा।" कहते हुए उसने मेरा गमछा[2] खींच लिया।...गया अब मेरा गमछा। पूरी कक्षा में इसकी खींचातानी होगी और फट जाएगा। मन में मैं यह सोचकर रुआँसा हो गया। लेकिन वैसा कुछ हुआ नहीं। उस लड़के ने उसे अपने सिर पर लपेट लिया और मास्टर की नकल करते हुए उसे उतारकर टेबल पर रखकर अपने सिर पर हाथ फेरते हुए हुश्शऽऽ की आवाज़ की। इतने में मास्टर आ गए और वह गुंडा झट से अपनी जगह पर जा बैठा। मेरा गमछा टेबल पर ही रहा। पहले दिन ही इस घटना ने मेरे दिल की धड़कन बढ़ा दी और छाती में धक-धक होने लगी।

रणनवरे मास्टर कक्षा में आए। टेबल पर मटमैला गमछा देखकर उन्होंने पूछा, "किसका है रे?"

"मेरा है मास्टर।"

"तू कौन है?"

"मैं जकाते। पिछले साल फ़ेल होकर इसी कक्षा में बैठा हूँ।"

"गमछा ले जा पहले।" उसने छड़ी से मेरा गमछा उठाकर नीचे डाल दिया। मैं उसे उठाने गया तो कहा, "यहाँ क्यों रखा है मूर्खों की तरह?"

"मैंने नहीं रखा मास्टर, उस लड़के ने मेरे सिर से छीन लिया और यहाँ रख दिया है।"

"यह चह्वाण का बच्चा बिना बात के उठक-पटक करता है।" कहते हुए मास्टर उस लड़के की ओर चले गए।

मास्टर ने मेरे बारे में और भी पूछताछ की और वामन पंडित की कविता पढ़ाने लगे।

2. पतले कपड़े का तौलिया

बीच की छुट्टी में मेरी धोती की काछ उस लड़के ने दो बार खींचने की कोशिश की। लेकिन मैं फिर दीवार की तरफ़ पीठ करके जा बैठा तो पूरी छुट्टी होने से पहले उठा ही नहीं। खिलौने के लिए बनाए गए कौआ के बच्चे को खुले में रख देने पर जैसे कौए चारों ओर से उस पर चोंच मारते हैं, वैसा ही मेरा हाल हो गया। मेरी ही पाठशाला मुझे चोंच मार-मारकर घायल कर रही थी।

घर जाते समय सोच रहा था कि लड़के मेरी खिल्ली उड़ाते हैं–धोती खींचते हैं–गमछा खींचते हैं, तो इस तरह कैसे निबाह होगा...? नहीं जाऊँगा ऐसी पाठशाला में। इससे तो अपना खेत ही अच्छा है–चुपचाप काम करते रहो। गली के दो ही लड़के हैं कक्षा में, वे भी मुझसे भी कमज़ोर हैं। वे क्या मदद करेंगे?...

मन उदास हो गया। चौथी से पाँचवीं तक पाठशाला अपनी लगती थी। लेकिन अब वह एकदम पराई-पराई जैसी लगने लगी है। अपना वहाँ कोई नहीं है।

सवेरे हो जाने पर मैं उमंग में था–फिर से पाठशाला चला गया। माँ के पीछे पड़कर एक नयी टोपी और दो नाड़ीवाली चड्डी मैलखाऊ रंग की आठ दिन में मँगवा ली। चड्डी पहनकर पाठशाला में और धोती पहनकर खेत पर जाना शुरू हुआ। धीरे-धीरे लड़कों से परिचय बढ़ गया।

मंत्री नामक मास्टर कक्षा अध्यापक के रूप में बीच में आए। वे प्रायः छड़ी का उपयोग नहीं करते थे। हाथ से गरदन पकड़कर पीठ पर घूसा लगाते थे। पीठ पर एक ज़ोर का बैठते ही लड़का हूक भरने लगता। लड़कों के मन में उनकी दहशत बैठी हुई थी। इसके कारण ऊधम करने वाले लड़कों को प्रायः मौका नहीं मिलता था। पढ़ने वाले लड़कों को शाबाशी मिलने लगी। मंत्री मास्टर गणित पढ़ाते थे। एकाध सवाल गलत हो जाता तो उसे वे अपने पास बुलाकर समझा देते। एकाध लड़के की कोई मूर्खता दिखाई दी तो वे उसे वहीं ठोंक देते। इसलिए सभी का पसीना छूटने लगता। सभी लड़के घर से पढ़ाई करके आने लगे।

वसंत पाटील नाम का एक लड़का शरीर से दुबला-पतला, किंतु बड़ा होशियार था। उसके सवाल हमेशा सही निकलते थे। स्वभाव से शांत। हमेशा पढ़ने में लगा रहता। घर से पूरी तैयारी करके आता होगा। दूसरों के सवालों की जाँच करता था। मास्टर ने उसे कक्षा मॉनीटर बना दिया था। हमेशा पहली बेंच पर बैठता बिलकुल मास्टर के पास। कक्षा में उसका सम्मान था।

मुझे यह लड़का मेरी अपेक्षा छोटा लगता था...मैं उससे पहले ही पाँचवीं में पहुँच गया था। गलती से पिछड़ गया हूँ मैं। इसलिए मास्टर को कक्षा की मॉनीटरी मेरे हाथ में सौंपनी चाहिए, मुझे ऐसा लगने लगा। दूसरी ओर यह भी लगता था कि मुझे दो महीने में पाँचवीं की पूरी तैयारी करके अच्छी तरह पास होना है। कक्षा में दंगा करना और पढ़ाई की उपेक्षा करना मेरे लिए मुनासिब नहीं। हम तो इस कक्षा में ऊपरी हैं, यह नहीं भूलना चाहिए।

इन सब बातों के कारण मेरा सारा ध्यान पढ़ाई की ओर ही रहा और वसंत पाटिल की तरह ही पढ़ाई का काम करने लगा। मैंने अपनी किताबों पर अखबारी कागज़ के कवर चढ़ा दिए। अपना बस्ता व्यवस्थित रखने लगा। हमेशा कुछ-न-कुछ पढ़ते बैठता था। उसने यदि कक्षा में कोई शाबाशी का काम किया तो मैं भी दूसरे दिन वैसा ही कुछ करने लगा। मन की एकाग्रता के कारण गणित झटपट समझ में आने लगा और सवाल सही होने लगे।

कभी-कभी वसंत पाटील के साथ-साथ, एक तरफ़ से वह तो दूसरी तरफ़ से मैं लड़कों के सवाल जाँचने लगा। इसके कारण मेरी और वसंत की दोस्ती जम गई। एक-दूसरे की सहायता से कक्षा में हम अनेक काम करने लगे। मास्टर मुझे 'आनंदा' कहकर बुलाने लगे। मुझे पहली बार किसी ने 'आनंदा' कहकर पुकारा। माँ कभी 'आनंदा' कहती, परन्तु बहुत कम। मास्टरों के इस अपनेपन के व्यवहार के कारण और वसंत की दोस्ती के कारण पाठशाला में मेरा विश्वास बढ़ने लगा।

न.वा.सौंदलगेकर मास्टर मराठी पढ़ाने आते थे। पढ़ाते समय वे स्वयं रम जाते थे। विशेषत: वे कविता बहुत ही अच्छे ढंग से पढ़ाते थे। सुरीला गला, छंद की बढ़िया चाल और उसके साथ ही रसिकता थी उनके पास। पुरानी-नयी मराठी कविताओं के साथ-साथ उन्हें अनेक अंग्रेज़ी कविताएँ कंठस्थ थीं। अनेक छंदों की लय, गति, ताल उन्हें अच्छी तरह आते थे। पहले वे एकाध कविता गाकर सुनाते थे–फिर बैठे-बैठे अभिनय के साथ कविता का भाव ग्रहण कराते। उसी भाव की किसी अन्य कवि की कविता भी सुनाकर दिखाते। बीच में कवि यशवंत, बा.भ.बोरकर, भा.रा. ताँबे, गिरीश, केशव कुमार आदि के साथ अपनी मुलाकात के संस्मरण सुनाते। वे स्वयं भी कविता करते थे। याद आ गई तो वे अपनी भी एकाध सुना

देते। यह सब सुनते हुए, अनुभव करते हुए, मुझे अपना भान ही नहीं रहता था। मैं अपनी आँखों और कानों में प्राणों की सारी शक्ति लगा कर-दम रोककर मास्टर के हाव-भाव, ध्वनि, गति, चाल और रस पीता रहता।

सुबह-शाम खेत पर पानी लगाते हुए या ढोर चराते हुए अकेले में खुले गले से वे सारी कविताएँ मास्टर के ही हाव-भाव, यति-गति[3] और आरोह-अवरोह के अनुसार ही गाता। उन कविताओं के अर्थों से खेलता हुआ मैं आगे-पीछे आता-जाता था। मास्टर जिस प्रकार बैठे-बैठे ही अभिनय करते थे, मैं पानी लगाते-लगाते वैसा अभिनय करता था। क्यारियाँ पानी से कब की भर गई हैं, इसका भान भी नहीं रहता था। मास्टर की चाल पर दूसरी कविताएँ भी पढ़ी जा सकती हैं, इसका पता भी मुझे उसी समय चला।

इन कविताओं के साथ खेलते हुए मुझे दो बड़ी शक्तियाँ प्राप्त हुईं—पहले ढोर चराते हुए, पानी लगाते हुए, दूसरे काम करते हुए, अकेलापन बहुत खटकता था—किसी के साथ बोलते हुए, गपशप करते हुए, हँसी-मज़ाक करते हुए काम करना अच्छा लगता था—हमेशा कोई-न-कोई साथ में होना चाहिए, ऐसा लगता था। लेकिन अब अकेलेपन से कोई ऊब नहीं होती। मैं अपने आप से ही खेलने लगा। उलटा अब तो ऐसा लगने लगा कि जितना अकेला रहूँ, उतना अच्छा। इस कारण कविता ऊँची आवाज़ में गाई जा सकेगी। किसी भी तरह का अभिनय किया जा सकेगा। कविता गाते-गाते थुई-थुई करके नाचा जा सकता था। मैं सचमुच ही नाचने लगता था। मैंने अनेक कविताओं को अपनी खुद की चाल में गाना शुरू किया। अनंत काणेकर की कविता, जिसकी पहली पंक्ति इस प्रकार है-"चाँद रात पसरिते पाँढरी गाया धरणीवरी" को मैंने मास्टर की चाल से अलग अपनी चाल में बिठाकर गाई। यह चाल एक सिनेमा के गाने के आधार पर थी। वह गाना, 'केशव करणी जाति' नामक छंद में था। उस कविता को मैं मास्टर की अपेक्षा ज़्यादा

3. कविता में रुकने एवं आगे बढ़ने के नियम

अभिनय के साथ गाता था–चेहरे पर कविता के भाव पैदा करने का प्रयत्न करता था। मास्टर को मेरा प्रयत्न इतना अच्छा लगा कि उन्होंने छठी-सातवीं कक्षा के सभी लड़कों के सामने मुझे बुलाकर गवाया। पाठशाला के एक समारोह में भी उसे गवाया...इसके कारण मुझे लगा कि मेरे कुछ नए पंख निकल आए हैं।

मास्टर स्वयं कविता करते थे। अनेक मराठी कवियों के काव्य-संग्रह उनके घर में थे। वे उन कवियों के चरित्र और उनके संस्मरण बताया करते थे। इसके कारण ये कवि लोग मुझे 'आदमी' ही लगने लगे थे। खुद सौंदलगेकर मास्टर कवि थे। इसलिए यह विश्वास हुआ

कि कवि भी अपने जैसा ही एक हाड़-माँस का; क्रोध-लोभ का मनुष्य ही होता है। मुझे भी लगा कि मैं भी कविता कर सकता हूँ। मास्टर के दरवाज़े पर छाई हुई मालती की बेल पर मास्टर ने एक कविता लिखी थी। वह कविता और वह लता मैंने दोनों ही देखी थी। इसके कारण मुझे लगता था कि अपने आसपास, अपने गाँव में, अपने खेतों में, कितने ही ऐसे दृश्य हैं जिन पर मैं कविता बना सकता हूँ। यह सब कुछ अनजाने में ही होता रहता था। भैंस चराते-चराते मैं फ़सलों पर, जंगली फूलों पर तुकबंदी करने लगा। उन्हें ज़ोर से गुनगुनाता भी था और मास्टर को दिखाने भी लगा। कविता लिखने के लिए खीसा में कागज़ और पेंसिल रखने लगा। कभी वह न होते तो लकड़ी के छोटे टुकड़े से भैंस की पीठ पर रेखा खींचकर

लिखता था या पत्थर की शिला पर कंकड़ से लिख लेता। जब कंठस्थ हो जाती तो पोंछ देता। किसी रविवार के दिन एकाध कविता बन जाती तो सोमवार के दिन मास्टर को दिखाता।

बहुत बार तो सवेरा होने तक का धीरज छूट जाता और मैं रात को ही मास्टर के घर जाकर कविता दिखाता। वे उसे देखते और शाबाशी देते। और फिर कभी-कभी तो कविता के शास्त्र पर एक पूरी महफ़िल हो जाती। बोलते-बोलते मास्टर बताते–कवि की भाषा कैसी होनी चाहिए, संस्कृत भाषा का उपयोग कविता के लिए किस तरह होता है, छंद की जाति कैसे पहचानें, उसका लयक्रम कैसे देखें, अलंकारों में सूक्ष्म बातें कैसी होती हैं, अलंकारों का भी एक शास्त्र होता है, कवि को शुद्ध लेखन करना क्यों जरूरी होता है, शुद्ध लेखन के नियम क्या हैं, आदि अनेक विषयों पर वे सहज बातें बताते रहते। मुझे उनके प्रति अपनापा अनुभव होता। वे मुझे पुस्तक देते। अलग-अलग प्रकार के कविता-संग्रह देते। उन्होंने कई नयी तरह की कविताएँ सुनाईं तो लगा मैं इस ढर्रे पर कविता बनाऊँ। फिर तो सारे दिन उस दिशा में मेरी कोशिश चलती। इन बातों से मैं सौंदलगेकर मास्टर के बहुत नज़दीक पहुँच गया और जाने-अनजाने मेरी मराठी भाषा सुधरने लगी। उसे लिखते समय मैं बहुत सचेत रहने लगा। अलंकार, छंद, लय आदि को सूक्ष्मता से देखने लगा। शब्दों का नशा चढ़ने लगा और ऐसा लगने लगा कि मन में कोई मधुर बाजा बजता रहता है।

–अनुवाद *केशव प्रथम वीर*

अभ्यास

1. 'जूझ' शीर्षक के औचित्य पर विचार करते हुए यह स्पष्ट करें कि क्या यह शीर्षक कथा नायक की किसी केंद्रीय चारित्रिक विशेषता को उजागर करता है?
2. स्वयं कविता रच लेने का आत्मविश्वास लेखक के मन में कैसे पैदा हुआ?
3. श्री सौंदलगेकर के अध्यापन की उन विशेषताओं को रेखांकित करें जिन्होंने कविताओं के प्रति लेखक के मन में रुचि जगाई।
4. कविता के प्रति लगाव से पहले और उसके बाद अकेलेपन के प्रति लेखक की धारणा में क्या बदलाव आया?
5. आपके खयाल से पढ़ाई-लिखाई के संबंध में लेखक और दत्ता जी राव का रवैया सही था या लेखक के पिता का? तर्क सहित उत्तर दें।
6. दत्ता जी राव से पिता पर दबाव डलवाने के लिए लेखक और उसकी माँ को एक झूठ का सहारा लेना पड़ा। यदि झूठ का सहारा न लेना पड़ता तो आगे का घटनाक्रम क्या होता? अनुमान लगाएँ।

3

ओम थानवी

अतीत में दबे पाँव

अभी भी मुअनजो-दड़ो[1] और हड़प्पा[2] प्राचीन भारत के ही नहीं, दुनिया के दो सबसे पुराने नियोजित शहर माने जाते हैं। ये सिंधु घाटी सभ्यता के परवर्ती यानी परिपक्व दौर के शहर हैं। खुदाई में और शहर भी मिले हैं। लेकिन मुअनजो-दड़ो ताम्र काल के शहरों में सबसे बड़ा है। वह सबसे उत्कृष्ट भी है। व्यापक खुदाई यहीं पर संभव हुई। बड़ी तादाद में इमारतें, सड़कें, धातु-पत्थर की मूर्तियाँ, चाक पर बने चित्रित भांडे, मुहरें, साज़ो-सामान और खिलौने आदि मिले। सभ्यता का अध्ययन संभव हुआ। उधर सैकड़ों मील दूर हड़प्पा के ज़्यादातर साक्ष्य रेललाइन बिछने के दौरान 'विकास की भेंट चढ़ गए।'

मुअनजो-दड़ो के बारे में धारणा है कि अपने दौर में वह घाटी की सभ्यता का केंद्र रहा होगा। यानी एक तरह की राजधानी। माना जाता है यह शहर दो सौ हैक्टर क्षेत्र में फैला था। आबादी कोई पचासी हज़ार थी। ज़ाहिर है, पाँच हज़ार साल पहले यह आज के 'महानगर' की परिभाषा को भी लाँघता होगा।

दिलचस्प बात यह है कि सिंधु घाटी मैदान की संस्कृति थी, पर पूरा मुअनजो-दड़ो छोटे-मोटे टीलों पर आबाद था। ये टीले प्राकृतिक नहीं थे। कच्ची और पक्की दोनों तरह की

1. पाकिस्तान के सिंध प्रांत में स्थित पुरातात्त्विक स्थान, जहाँ सिंधु घाटी सभ्यता बसी थी। मुअनजो-दड़ो का अर्थ है मुर्दों का टीला। वर्तमान समय में इसे मोहनजोदड़ो के नाम से जाना जाता है।
2. पाकिस्तान के पंजाब प्रांत का पुरातात्त्विक स्थान, जहाँ सिंधु घाटी सभ्यता का दूसरा प्रमुख नगर बसा था

ईंटों से धरती की सतह को ऊँचा उठाया गया था, ताकि सिंधु का पानी बाहर पसर आए तो उससे बचा जा सके।

मुअनजो-दड़ो की खूबी यह है कि इस आदिम शहर की सड़कों और गलियों में आप आज भी घूम-फिर सकते हैं। यहाँ की सभ्यता और संस्कृति का सामान भले अजायबघरों की

मुअनजो-दड़ो की एक गली

शोभा बढ़ा रहा हो, शहर जहाँ था अब भी वहीं है। आप इसकी किसी भी दीवार पर पीठ टिका कर सुस्ता सकते हैं। वह एक खंडहर क्यों न हो, किसी घर की देहरी पर पाँव रखकर आप सहसा सहम सकते हैं, रसोई की खिड़की पर खड़े होकर उसकी गंध महसूस कर सकते हैं। या शहर के किसी

मुअनजो-दड़ो की एक मुख्य सड़क जो 33 फीट चौड़ी है

सुनसान मार्ग पर कान देकर उस बैलगाड़ी की रुन-झुन सुन सकते हैं जिसे आपने पुरातत्त्व की तसवीरों में मिट्टी के रंग में देखा है। सच है कि यहाँ किसी आँगन की टूटी-फूटी सीढ़ियाँ अब आपको कहीं नहीं ले जातीं; वे आकाश की तरफ़ अधूरी रह जाती हैं। लेकिन उन अधूरे पायदानों पर खड़े होकर अनुभव किया जा सकता है कि आप दुनिया की छत पर हैं; वहाँ से आप इतिहास को नहीं, उसके पार झाँक रहे हैं।

सबसे ऊँचे चबूतरे पर बड़ा बौद्ध स्तूप है। मगर यह मुअनजो-दड़ो की सभ्यता के बिखरने के बाद एक जीर्ण-शीर्ण टीले पर बना। कोई पचीस फुट ऊँचे चबूतरे पर छब्बीस सदी पहले बनी ईंटों के दम पर स्तूप को आकार दिया गया। चबूतरे पर भिक्षुओं के कमरे भी हैं। 1922 में जब राखालदास बनर्जी यहाँ आए, तब वे इसी स्तूप की खोजबीन करना चाहते थे। इसके गिर्द खुदाई शुरू करने के बाद उन्हें इलहाम[3] हुआ कि यहाँ ईसा पूर्व के निशान हैं। भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण के महानिदेशक जॉन मार्शल के निर्देश पर खुदाई का व्यापक अभियान शुरू हुआ। धीमे-धीमे यह खोज विशेषज्ञों को सिंधु घाटी सभ्यता की देहरी पर ले आई। इस खोज ने भारत को मिस्र और मेसोपोटामिया (इराक) की प्राचीन सभ्यताओं के समकक्ष ला खड़ा किया। दुनिया की प्राचीन सभ्यता होने के भारत के दावे को पुरातत्त्व का वैज्ञानिक आधार मिल गया।

पर्यटक बँगले से एक सर्पिल पगडंडी पार कर हम सबसे पहले इसी स्तूप पर पहुँचे। पहली ही झलक ने हमें अपलक कर दिया। इसे नागर भारत का सबसे पुराना लैंडस्केप कहा गया है। यह शायद सबसे रोमांचक भी है। न आकाश बदला है, न धरती। पर कितनी सभ्यताएँ, इतिहास और कहानियाँ बदल गईं। इस ठहरे हुए दृश्य में हज़ारों साल से लेकर पलभर पहले तक की धड़कन बसी हुई है। इसे देखकर सुना जा सकता है। भले ही किसी जगह के बारे में हमने कितना पढ़-सुन रखा हो, तसवीरें या वृत्तचित्र देखे हों,

3. अनुभूति

देखना अपनी आँख से देखना है। बाकी सब आँख का झपकना है। जैसे यात्रा अपने पाँव चलना है, बाकी सब तो कदम-ताल है।

मौसम जाड़े का था पर दुपहर की धूप बहुत कड़ी थी। सारे आलम को जैसे एक फीके रंग में रंगने की कोशिश करती हुई । यह इलाका राजस्थान से बहुत मिलता-जुलता है। रेत के टीले नहीं हैं। खेतों का हरापन यहाँ है। मगर बाकी वही खुला आकाश, सूना परिवेश; धूल, बबूल और ज़्यादा ठंड, ज़्यादा गरमी। मगर यहाँ की धूप का मिजाज़ जुदा है। राजस्थान की धूप पारदर्शी है। सिंध की धूप चौंधियाती है। तसवीर उतारते वक्त आप कैमरे में ज़रूरी पुर्ज़े न घुमाएँ तो ऐसा जान पड़ेगा जैसे दृश्यों के रंग उड़े हुए हों।

पर इससे एक फ़ायदा हुआ। हमें हर दृश्य पर नज़रें दुबारा फिरानी पड़ती । इस तरह बार-बार निहारें तो दृश्य ज़ेहन में ऐसे ठहरते हैं मानो तसवीर देखकर उनकी याद ताज़ा करने की कभी ज़रूरत न पड़े।

स्तूप वाला चबूतरा मुअनजो-दड़ो के सबसे खास हिस्से के एक सिरे पर स्थित है। इस हिस्से को पुरातत्त्व के विद्वान 'गढ़' कहते हैं। चारदीवारी के भीतर ऐतिहासिक शहरों के सत्ता-केंद्र अवस्थित होते थे, चाहे वह राजसत्ता हो या धर्मसत्ता। बाकी शहर गढ़ से कुछ दूर बसे होते थे। क्या यह रास्ता भी दुनिया को मुअनजो-दड़ो ने दिखाया?

मुअनजो-दड़ो में बौद्ध स्तूप

सभी अहम और अब दुनिया-भर में प्रसिद्ध इमारतों के खंडहर चबूतरे के पीछे यानी पश्चिम में हैं। इनमें 'प्रशासनिक' इमारतें, सभा भवन, ज्ञानशाला और कोठार हैं। वह अनुष्ठानिक महाकुंड भी जो सिंधु घाटी सभ्यता के अद्वितीय वास्तुकौशल को स्थापित करने के लिए अकेला ही काफ़ी माना जाता है। असल में यहाँ यही एक निर्माण है जो अपने मूल स्वरूप के बहुत नज़दीक बचा रह सका है। बाकी इमारतें इतनी उजड़ी हुई हैं कि कल्पना और बरामद चीज़ों के जोड़ से उनके उपयोग का अंदाज़ा भर लगाया जा सकता है।

नगर नियोजन की मुअनजो-दड़ो अनूठी मिसाल है। इस कथन का मतलब आप बड़े चबूतरे से नीचे की तरफ़ देखते हुए सहज ही भाँप सकते हैं। इमारतें भले खंडहरों में बदल चुकी हों मगर 'शहर' की सड़कों और गलियों के विस्तार को स्पष्ट करने के लिए ये खंडहर काफ़ी हैं। यहाँ की कमोबेश सारी सड़कें सीधी हैं या फिर आड़ी। आज वास्तुकार इसे 'ग्रिड प्लान' कहते हैं। आज की सेक्टर-मार्का कॉलोनियों में हमें आड़ा-सीधा 'नियोजन' बहुत मिलता है। लेकिन वह रहन-सहन को नीरस बनाता है। शहरों में नियोजन के नाम पर भी हमें अराजकता ज़्यादा हाथ लगती है। ब्रासीलिया या चंडीगढ़ और इस्लामाबाद 'ग्रिड' शैली के शहर हैं जो आधुनिक नगर नियोजन के प्रतिमान ठहराए जाते हैं, लेकिन उनकी बसावट शहर के खुद विकसने का कितना अवकाश छोड़ती है इस पर बहुत शंका प्रकट की जाती है।

मुअनजो-दड़ो की साक्षर सभ्यता एक सुसंस्कृत समाज की स्थापना थी, लेकिन उसमें नगर नियोजन और वास्तुकला की आखिर कितनी भूमिका थी?

स्तूप वाले चबूतरे के पीछे 'गढ़' और ठीक सामने 'उच्च' वर्ग की बस्ती है। उसके पीछे पाँच किलोमीटर दूर सिंधु बहती है। पूरब की इस बस्ती से दक्षिण की तरफ़ नज़र दौड़ाते हुए पूरा पीछे घूम जाएँ तो आपको मुअनजो-दड़ो के खंडहर हर जगह दिखाई देंगे। दक्षिण में जो टूटे-फूटे घरों का जमघट है, वह कामगारों की

बस्ती है। कहा जा सकता है इतर वर्ग की। संपन्न समाज में वर्ग भी होंगे। लेकिन क्या निम्न वर्ग यहाँ नहीं था? कहते हैं, निम्न वर्ग के घर इतनी मज़बूत सामग्री के नहीं रहे होंगे कि पाँच हज़ार साल टिक सकें। उनकी बस्तियाँ और दूर रही होंगी। यह भी है कि सौ साल में अब तक इस इलाके के एक-तिहाई हिस्से की खुदाई ही हो पाई है। अब वह भी बंद हो चुकी है।

हम पहले स्तूप के टीले से महाकुंड के विहार की दिशा में उतरे। दाईं तरफ़ एक लंबी गली दीखती है। इसके आगे महाकुंड है। पता नहीं सायास है या संयोग कि धरोहर के प्रबंधकों ने उस गली का नाम दैव मार्ग (डिविनिटि स्ट्रीट) रखा है। माना जाता है कि उस सभ्यता में सामूहिक स्नान किसी अनुष्ठान का अंग होता था। कुंड करीब चालीस फुट लंबा और पच्चीस फुट चौड़ा है। गहराई सात फुट। कुंड में उत्तर और दक्षिण से सीढ़ियाँ उतरती हैं। इसके तीन तरफ़ साधुओं के कक्ष बने हुए हैं। उत्तर में दो पाँत में आठ स्नानघर हैं। इनमें किसी का द्वार दूसरे के सामने नहीं खुलता। सिद्ध वास्तुकला का यह भी एक नमूना है।

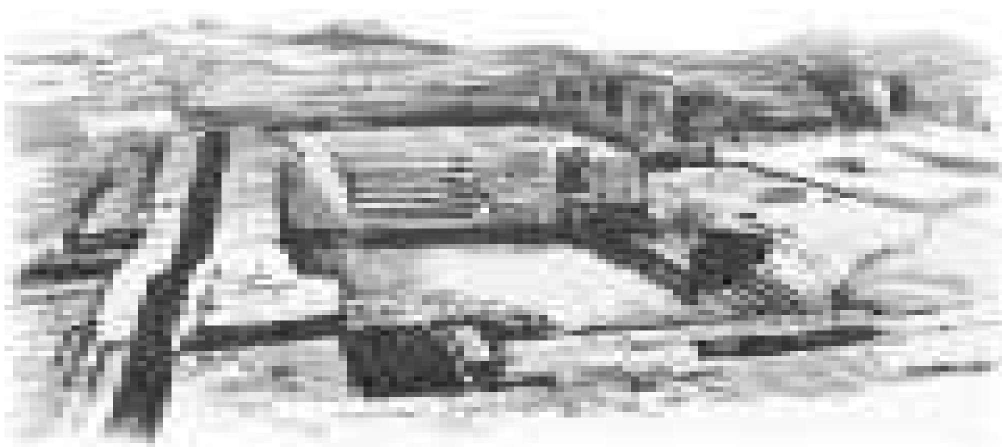

मुअनजो-दड़ो का प्रसिद्ध जल कुंड

इस कुंड में खास बात पक्की ईंटों का जमाव है। कुंड का पानी रिस न सके और बाहर का 'अशुद्ध' पानी कुंड में न आए, इसके लिए कुंड के तल में और दीवारों पर ईंटों के बीच चूने और चिरोड़ी के गारे का इस्तेमाल हुआ है। पार्श्व की दीवारों के साथ दूसरी दीवार खड़ी की गई है जिसमें सफ़ेद डामर का प्रयोग है। कुंड के पानी के बंदोबस्त के लिए एक तरफ़ कुआँ है। दोहरे घेरे वाला यह अकेला कुआँ है। इसे भी कुंड के पवित्र या अनुष्ठानिक होने का प्रमाण माना गया है। कुंड से पानी को बाहर बहाने के लिए नालियाँ हैं। इनकी खासियत यह है कि ये भी पक्की ईंटों से बनी हैं और ईंटों से ढकी भी हैं।

जल निकासी का उन्नत प्रबंध जो सिंधु घाटी की अनूठी विशेषता है

पक्की और आकार में समरूप धूसर ईंटें तो सिंधु घाटी सभ्यता की विशिष्ट पहचान मानी ही गई हैं, ढकी हुई नालियों का उल्लेख भी पुरातात्त्विक विद्वान और इतिहासकार ज़ोर देकर करते हैं। पानी-निकासी का ऐसा सुव्यवस्थित बंदोबस्त इससे पहले के इतिहास में नहीं मिलता।

महाकुंड के बाद हमने 'गढ़' की 'परिक्रमा' की। कुंड के दूसरी तरफ़ विशाल कोठार है। कर के रूप में हासिल अनाज शायद यहाँ जमा किया जाता था। इसके निर्माण रूप खासकर चौकियों और हवादारी को देखकर ऐसा कयास लगाया गया है। यहाँ नौ-नौ चौकियों की तीन कतारें हैं। उत्तर में एक गली है जहाँ बैलगाड़ियों का–जिनके प्रयोग के साक्ष्य मिले हैं–ढुलाई के लिए आवागमन होता होगा। ठीक इसी तरह का कोठार हड़प्पा में भी पाया गया है।

अब यह जगज़ाहिर है कि सिंधु घाटी के दौर में व्यापार ही नहीं, उन्नत खेती भी होती थी। बरसों यह माना जाता रहा कि सिंधु

घाटी के लोग अन्न उपजाते नहीं थे, उसका आयात करते थे। नयी खोज ने इस खयाल को निर्मूल साबित किया है। बल्कि अब कुछ विद्वान मानते हैं कि वह मूलतः खेतिहर और पशुपालक सभ्यता ही थी। लोहा शुरू में नहीं था पर पत्थर और ताँबे की बहुतायत थी। पत्थर सिंध में ही था, ताँबे की खानें राजस्थान में थीं। इनके उपकरण खेती-बाड़ी में प्रयोग किए जाते थे। जबकि मिस्र और सुमेर में चकमक और लकड़ी के उपकरण इस्तेमाल होते थे। इतिहासकार इरफ़ान हबीब के मुताबिक यहाँ के लोग रबी की फ़सल लेते थे। कपास, गेहूँ, जौ, सरसों और चने की उपज के पुख्ता सबूत खुदाई में मिले हैं। वह सभ्यता का तर-युग था जो धीमे-धीमे सूखे में ढल गया।

विद्वानों का मानना है कि यहाँ ज्वार, बाजरा और रागी की उपज भी होती थी। लोग खजूर, खरबूज़े और अंगूर उगाते थे। झाड़ियों से बेर जमा करते थे। कपास की खेती भी होती थी। कपास को छोड़कर बाकी सबके बीज मिले हैं और उन्हें परखा गया है। कपास के बीज तो नहीं, पर सूती कपड़ा मिला है। ये दुनिया में सूत के दो सबसे पुराने नमूनों में एक है। दूसरा सूती कपड़ा तीन हज़ार ईसा पूर्व का है जो जॉर्डन में मिला। मुअनजो-दड़ो में सूत की कताई-बुनाई के साथ रंगाई भी होती थी। रंगाई का एक छोटा कारखाना खुदाई में माधोस्वरूप वत्स को मिला था। छालटी (लिनन) और ऊन कहते हैं यहाँ सुमेर से आयात होते थे। शायद सूत उनको निर्यात होता हो। जैसा कि बाद में सिंध से मध्य एशिया और यूरोप को सदियों हुआ। प्रसंगवश, मेसोपोटामिया के शिलालेखों में मुअनजो-दड़ो के लिए 'मेलुहा' शब्द का संभावित प्रयोग मिलता है।

महाकुंड के उत्तर-पूर्व में एक बहुत लंबी-सी इमारत के अवशेष हैं। इसके बीचोंबीच खुला बड़ा दालान है। तीन तरफ़ बरामदे हैं। इनके साथ कभी छोटे-छोटे कमरे रहे होंगे। पुरातत्त्व के जानकार कहते हैं कि धार्मिक अनुष्ठानों में ज्ञानशालाएँ सटी हुई होती थीं, उस नज़रिए से इसे 'कॉलेज ऑफ प्रीस्ट्स' माना जा सकता है। दक्षिण में एक और भग्न इमारत है। इसमें बीस खंभों वाला एक बड़ा हॉल है। अनुमान है कि यह राज्य सचिवालय, सभा-भवन या कोई सामुदायिक केंद्र रहा होगा।

गढ़ की चारदीवारी लाँघ कर हम बस्तियों की तरफ़ बढ़े। ये 'गढ़' के मुकाबले छोटे टीलों पर बनी हैं, इसलिए इन्हें 'नीचा नगर' कहकर भी पुकारा जाता है। खुदाई की प्रक्रिया में टीलों का आकार घट गया है, कहीं-कहीं वे फिर ज़मीन से जा मिले हैं और बस्ती के कुएँ, लगता है जैसे मीनारों की शक्ल में धरती छोड़कर बाहर निकल आए हैं।

पूरब की बस्ती 'रईसों की बस्ती' है। हालाँकि आज के युग में पूरब की बस्तियाँ गरीबों की बस्तियाँ मानी जाती हैं। मुअनजो-दड़ो इसका उलट था। यानी बड़े घर, चौड़ी सड़कें,

ज़्यादा कुएँ। मुअनजो-दड़ो के सभी खंडहरों को खुदाई कराने वाले पुरातत्त्ववेत्ताओं का संक्षिप्त नाम दे दिया गया है। जैसे 'डीके' हलका-दीक्षित काशीनाथ की खुदाई। उनके नाम पर यहाँ दो हलके हैं। 'डीके' क्षेत्र दोनों बस्तियों में सबसे महत्त्वपूर्ण हैं। शहर की मुख्य सड़क (फ़र्स्ट स्ट्रीट) यहीं पर है। यह बहुत लंबी सड़क है, मानो कभी पूरे शहर को नापती हो। अब यह आधा मील बची है। इसकी चौड़ाई तैंतीस फ़ुट है। मुअनजो-दड़ो से तीन तरह के वाहनों के साक्ष्य मिले हैं। इनमें सबसे चौड़ी बैलगाड़ी रही होगी। इस सड़क पर दो बैलगाड़ियाँ एक साथ आसानी से आ-जा सकती हैं। यह सड़क वहाँ पहुँचती है, जहाँ कभी 'बाज़ार' था।

इस सड़क के दोनों ओर घर हैं। लेकिन सड़क की ओर सारे घरों की सिर्फ़ पीठ दिखाई देती है। यानी कोई घर सड़क पर नहीं खुलता; उनके दरवाज़े अंदर गलियों में हैं। दिलचस्प संयोग है कि चंडीगढ़ में ठीक यही शैली पचास साल पहले कार्बूजिए ने इस्तेमाल की। वहाँ भी कोई घर मुख्य सड़क पर नहीं खुलता। आपको किसी के घर जाने के लिए मुख्य सड़क से पहले सेक्टर के भीतर दाखिल होना पड़ता है, फिर घर की गली में, फिर घर में। क्या कार्बूजिए ने यह सीख मुअनजो-दड़ो से ली? कहते हैं, कविता में से कविता निकलती है। कलाओं की तरह वास्तुकला में भी कोई प्रेरणा चेतन-अवचेतन ऐसे ही सफ़र करती होगी!

ढकी हुई नालियाँ मुख्य सड़क के दोनों तरफ़ समांतर दिखाई देती हैं। बस्ती के भीतर भी इनका यही रूप है। हर घर में एक स्नानघर है। घरों के भीतर से पानी या मैल की नालियाँ बाहर हौदी तक आती हैं और फिर नालियों के जाल से जुड़ जाती हैं। कहीं-कहीं वे खुली हैं पर ज़्यादातर बंद हैं। स्वास्थ्य के प्रति मुअनजो-दड़ो के बाशिंदों के सरोकार का यह बेहतर उदाहरण है। बस्ती के भीतर छोटी सड़कें हैं और उनसे छोटी गलियाँ भी। छोटी सड़कें नौ से बारह फ़ुट तक चौड़ी हैं। इमारतों से पहले जो चीज़ दूर से ध्यान खींचती है, वह है कुओं का प्रबंध। ये कुएँ भी पकी हुई एक ही आकार की ईंटों से बने हैं। इतिहासकार कहते हैं सिंधु

घाटी सभ्यता संसार में पहली ज्ञात संस्कृति है जो कुएँ खोद कर भू-जल तक पहुँची। उनके मुताबिक केवल मुअनजो-दड़ो में सात सौ के करीब कुएँ थे।

नदी, कुएँ, कुंड, स्नानागार और बेजोड़ पानी-निकासी। क्या सिंधु घाटी सभ्यता को हम जल-संस्कृति कह सकते हैं?

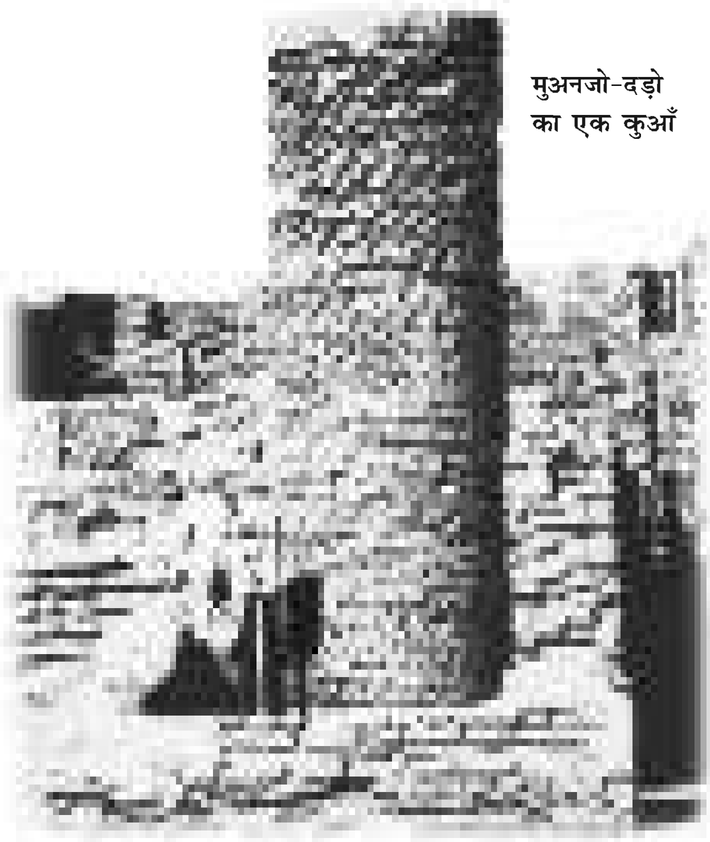

मुअनजो-दड़ो का एक कुआँ

बड़ी बस्ती में पुरातत्त्वशास्त्री काशीनाथ दीक्षित के नाम पर एक हलका 'डीके-जी' कहलाता है। इसके घरों की दीवारें ऊँची और मोटी हैं। मोटी दीवार का अर्थ यह लगाया जाता है कि उस पर दूसरी मंज़िल भी रही होगी। कुछ दीवारों में छेद हैं जो संकेत देते हैं कि दूसरी मंज़िल उठाने के लिए शायद यह शहतीरों की जगह हो। सभी घर ईंट के हैं। एक ही आकार की ईंटें-1:2:4 के अनुपात की। सभी भट्टी में पकी हुईं। हड़प्पा से हटकर, जहाँ पक्की और कच्ची ईंटों का मिला-जुला निर्माण उजागर हुआ है। मुअनजो-दड़ो में पत्थर का प्रयोग मामूली हुआ। कहीं-कहीं नालियाँ ही अनगढ़ पत्थरों से ढकी दिखाई दीं।

इन घरों में दिलचस्प बात यह है कि सामने की दीवार में केवल प्रवेश द्वार बना है, कोई खिड़की नहीं है। खिड़कियाँ शायद ऊपर की दीवार में रहती हों, यानी दूसरी मंज़िल पर। बड़े घरों के भीतर आँगन के चारों तरफ़ बने कमरों में खिड़कियाँ ज़रूर हैं। बड़े आँगन वाले घरों के बारे में समझा जाता है कि वहाँ कुछ उद्यम होता होगा। कुम्हारी का काम या कोई धातु-कर्म। हालाँकि सभी घर खंडहर हैं और दिखाई देने वाली चीज़ों से हम सिर्फ़ अंदाज़ा लगा सकते हैं।

घर छोटे भी हैं और बड़े भी। लेकिन सब घर एक कतार में हैं। ज़्यादातर घरों का आकार तकरीबन तीस-गुणा-तीस फ़ुट का होगा। कुछ इससे दुगने और तिगुने आकार के भी हैं। इनकी वास्तु शैली कमोबेश एक-सी प्रतीत होती है। व्यवस्थित और नियोजित शहर में शायद इसका भी कोई कायदा नगरवासियों पर लागू हो। एक घर को 'मुखिया' का घर कहा जाता है। इसमें दो आँगन और करीब बीस कमरे हैं।

डीके-बी, सी हलका आगे पूरब में है। दाढ़ी वाले 'याजक-नरेश' की मूर्ति इसी तरफ़ के एक घर से मिली थी। डीके-जी की "मुख्य सड़क" पर दक्षिण की ओर बढ़ें तो डेढ़ फर्लांग की दूरी पर 'एचआर' हलका है। सड़क उसे दो भागों में बाँट देती है। ये हलका *हेरल्ड हरग्रीव्ज* के नाम पर है जिन्होंने 1924-25 में *राखालदास बनर्जी* के बाद खुदाई करवाई थी। यहीं पर एक बड़े घर में कुछ कंकाल मिले थे, जिन्हें लेकर कई तरह की कहानियाँ बनती रहीं। प्रसिद्ध 'नर्तकी' शिल्प भी यहीं एक छोटे घर की खुदाई में निकला था। इसके बारे में पुरातत्त्वविद *मार्टिमर वीलर* ने कहा था कि संसार में इसके जोड़ की दूसरी चीज़ शायद ही होगी। यह मूर्ति अब दिल्ली के राष्ट्रीय संग्रहालय में है।

यहीं पर एक बड़ा घर है जिसे उपासना-केंद्र समझा जाता है। इसमें आमने-सामने की दो चौड़ी सीढ़ियाँ ऊपर की (ध्वस्त) मंज़िल की तरफ़ जाती हैं।

पश्चिम में–गढ़ी के ठीक पीछे–माधोस्वरूप वत्स के नाम पर वीएस हिस्सा है। यहाँ वह 'रंगरेज़ का कारखाना' भी लोग चाव से देखते हैं, जहाँ ज़मीन में ईंटों के गोल गड्ढे उभरे हुए हैं। अनुमान है कि इनमें रंगाई के बड़े बर्तन रखे जाते थे। दो कतारों में सोलह छोटे एक-मंज़िला मकान हैं। एक कतार मुख्य सड़क पर है, दूसरी पीछे की छोटी सड़क की तरफ़। सब में दो-दो कमरे हैं। स्नानघर यहाँ भी सब घरों में हैं। बाहर बस्ती में कुएँ सामूहिक प्रयोग के लिए हैं। ये कर्मचारियों या कामगारों के घर रहे होंगे।

मुअनजो-दड़ो में कुँओं को छोड़कर लगता है जैसे सब कुछ चौकोर या आयताकार हो। नगर की योजना, बस्तियाँ, घर, कुंड, बड़ी इमारतें, ठप्पेदार मुहरें, चौपड़ का खेल, गोटियाँ, तौलने के बाट आदि सब।

छोटे घरों में छोटे कमरे समझ में आते हैं। पर बड़े घरों में छोटे कमरे देखकर अचरज होता है। इसका एक अर्थ तो यह लगाया गया है कि शहर की आबादी काफ़ी रही होगी। दूसरी तरफ़ यह विचार सामने आया है कि बड़े घरों में निचली(भूतल)मंज़िल में नौकर-चाकर रहते होंगे। ऐसा अमेरिकी नृतत्त्वशास्त्री *ग्रेगरी पोसेल* का मानना है। बड़े घरों के आँगन में चौड़ी सीढ़ियाँ हैं। कुछ घरों में ऊपर की मंज़िल के निशान हैं, पर सीढ़ियाँ नहीं हैं। शायद यहाँ लकड़ी की सीढ़ियाँ रही हों, जो कालांतर में नष्ट हो गईं। संभव है ऊपर की मंज़िल में ज़्यादा खिड़कियाँ, झरोखे और साज-सज्जा रही हो। लकड़ी का इस्तेमाल भी बहुत संभव है पूरे घर में होता हो। कुछ घरों में बाहर की तरफ सीढ़ियों के संकेत हैं। यहाँ शायद ऊपर और नीचे अलग-अलग परिवार रहते होंगे। छोटे घरों की बस्ती में छोटी संकरी सीढ़ियाँ हैं। उनके पायदान भी ऊँचे हैं। ऐसा जगह की तंगी की वजह से होता होगा।

गौर किया कि मुअनजो-दड़ो के किसी घर में खिड़कियों या दरवाज़ों पर छज्जों के चिह्न नहीं हैं। गरम इलाकों के घरों में छाया के लिए यह आम प्रावधान होता है। क्या उस वक्त यहाँ इतनी कड़ी धूप नहीं पड़ती होगी? मुझे मुअनजो-दड़ो की जानी-मानी मुहरों के पशु याद हो आए। शेर, हाथी या गैंडा इस मरु-भूमि में हो नहीं सकते। क्या उस वक्त यहाँ जंगल भी थे? यह तथ्य स्थापित हो चुका है कि यहाँ अच्छी खेती होती थी। पुरातत्त्वी *शीरीन रत्नागर* का मानना है कि सिंधु-वासी कुँओं से सिंचाई कर लेते थे। दूसरे, मुअनजो-दड़ो की किसी खुदाई में नहर होने के प्रमाण नहीं मिले हैं। यानी बारिश उस काल में काफ़ी होती होगी। क्या बारिश घटने और कुँओं के अत्यधिक इस्तेमाल से भू-तल जल भी पहुँच से दूर चला गया? क्या पानी के अभाव में यह इलाका उजड़ा और उसके साथ सिंधु घाटी की समृद्ध सभ्यता भी?

मुअनजो-दड़ो में उस रोज़ हवा बहुत तेज़ बह रही थी। किसी बस्ती के टूटे-फूटे घर में दरवाज़े या खिड़की के सामने से हम गुज़रते तो सांय-सांय की ध्वनि में हवा की लय साफ़ पकड़ में आती थी। वैसे ही जैसे सड़क पर किसी वाहन से गुज़रते हुए किनारे की पटरी के अंतरालों में रह-रहकर हवा के लयबद्ध थपेड़े सुनाई पड़ते हैं। सूने घरों में हवा की लय और ज़्यादा गूँजती है। इतनी कि कोनों का अँधियारा भी सुनाई दे। यहाँ एक घर से दूसरे घर में जाने के लिए आपको किसी घर से वापस बाहर नहीं आना पड़ता। आखिर सब खंडहर हैं। सब कुछ खुला है। अब कोई घर जुदा नहीं है। एक घर दूसरे में खुलता है, दूसरा तीसरे में। जैसे पूरी बस्ती एक बड़ा घर हो। लेकिन घर एक नक्शा ही नहीं होता। हर घर का एक संस्कारमय आकार होता है। भले ही वह पाँच हज़ार साल पुराना घर क्यों न हो। हममें कमोबेश हर कोई पाँव आहिस्ता उठाते हुए एक घर से दूसरे घर में बेहद धीमी गति से दाखिल होता था। मानो मन में अतीत को निहारने की जिज्ञासा ही न हो, किसी अजनबी घर में **अनधिकार** चहल-कदमी का अपराध-बोध भी हो। जैसे किसी पराए घर में पिछवाड़े से चोरी-छुपे घुस आए सब जानते हैं यहाँ अब कोई बसने नहीं आएगा। लेकिन यह मुअनजो-दड़ो के पुरातात्त्विक अभियान की ही खूबी थी कि मिट्टी में इंच-दर-इंच कंघी कर इस कदर शहर, उसकी गलियों और घरों को ढूँढ़ा और सहेजा गया है कि यह अहसास हर वक्त आपके साथ रहता है, कल कोई यहाँ बसता था। ज़रूर यह आपकी ***सभ्यता*** परंपरा है। मगर घर आपका नहीं है।

अनचाहे मुझे मुअनजो-दड़ो की गलियों या घरों में राजस्थान का खयाल न आए, ऐसा नहीं हो सका। महज़ इसलिए नहीं कि (पश्चिमी) राजस्थान और सिंध-गुजरात की दृश्यावली एक-सी है। कई चीज़ें हैं जो मुझे यहाँ से वहाँ जोड़ जाती हैं। जैसे हज़ारों साल पुराने यहाँ के खेत। बाजरे और ज्वार की खेती। मुअनजो-दड़ो के घरों में टहलते हुए मुझे कुलधरा की याद आई। यह जैसलमेर के मुहाने पर पीले पत्थर के घरों वाला एक खूबसूरत गाँव है। उस

खूबसूरती में हरदम एक गमी व्याप्त है। गाँव में घर हैं, पर लोग नहीं हैं। कोई डेढ़ सौ साल पहले राजा से तकरार पर स्वाभिमानी गाँव का हर बाशिंदा रातोंरात अपना घर छोड़ चला गया। दरवाज़े-असबाब पीछे लोग उठा ले गए। घर खंडहर हो गए पर ढहे नहीं। घरों की दीवारें, प्रवेश और खिड़कियाँ ऐसी हैं जैसे कल की बात हो। लोग निकल गए, वक्त वहीं रह गया। खंडहरों ने उसे थाम लिया। जैसे सुबह लोग घरों से निकले हों, शायद शाम ढले लौट आने वाले हों।

राजस्थान ही नहीं, गुजरात, पंजाब और हरियाणा में भी कुएँ, कुंड, गली-कूचे, कच्ची-पक्की ईंटों के कई घर भी आज वैसे मिलते हैं जैसे हज़ारों साल पहले हुए।

जॉन मार्शल ने मुअनजो-दड़ो पर तीन खंडों का एक विशद प्रबंध छपवाया था। उसमें खुदाई में मिली ठोस पहियों वाली मिट्टी की गाड़ी के चित्र के साथ सिंध में पिछली सदी में बरती जा रही ठीक उसी तरह की बैलगाड़ी का भी एक चित्र प्रकाशित है। तसवीर से उन्होंने एक सतत् परंपरा का इज़हार किया, हालाँकि कमानी या आरे वाले पहिए का आविष्कार बहुत पहले हो चुका था जब मैं छोटा था, हमारे गाँव में भी लकड़ी वाले ठोस पहिए बैलगाड़ी में जुड़ते थे। दुल्हन पहली दफा इसी बैलगाड़ी में ससुराल जाती थी। बाद में हमारे यहाँ भी बैलगाड़ी में आरे वाले पहिए जुड़ने लगे। अब तो उसमें जीप के उतारू पहिए लगते हैं। हवाई जहाज़ के उतारू पहिए बाज़ार में आने के बाद ऊँटगाड़े (गाड़ी नहीं) का भी आविष्कार हो गया है। रेगिस्तान के जहाज़ से हवा के जहाज़ का यह ऐतिहासिक गठजोड़ है। हालाँकि कहना मुश्किल है कि दुल्हन की सवारी के रूप में बैलगाड़ी या ऊँटगाड़े का अब वहाँ कभी इस्तेमाल होता होगा!

हमारे मेज़बान ने ध्यान दिलाया कि मुअनजो-दड़ो का अजायबघर देखना अभी बाकी है। खंडहरों से निकल हम उस साबुत इमारत में आ गए। लेकिन प्रदर्शित सामान आपको खंडहरों से निकल आने का एहसास होने नहीं देता। अजायबघर छोटा ही है। जैसे किसी कस्बाई स्कूल की इमारत हो। सामान भी ज़्यादा नहीं है। अहम चीज़ें कराची, लाहौर, दिल्ली

और लंदन में हैं। यों अकेले मुअनजो-दड़ो की खुदाई में निकली पंजीकृत चीज़ों की संख्या पचास हज़ार से ज़्यादा है। मगर जो मुट्ठी भर चीज़ें यहाँ प्रदर्शित हैं, पहुँची हुई सिंधु सभ्यता की झलक दिखाने को काफ़ी हैं। काला पड़ गया गेहूँ, ताँबे और काँसे के बर्तन, मुहरें, वाद्य, चाक पर बने विशाल

मृद्-भांड, उन पर काले-भूरे चित्र, चौपड़ की गोटियाँ, दीये, माप-तौल पत्थर, ताँबे का आईना, मिट्टी की बैलगाड़ी और दूसरे खिलौने, दो पाटन वाली चक्की, कंघी, मिट्टी के कंगन, रंग-बिरंगे पत्थरों के मनकों वाले हार और पत्थर के औज़ार। अजायबघर में तैनात *अली नवाज़* बताता है, कुछ सोने के गहने भी यहाँ हुआ करते थे जो चोरी हो गए।

एक खास बात यहाँ कोई भी महसूस करेगा। अजायबघर में प्रदर्शित चीज़ों में औज़ार तो हैं, पर हथियार कोई नहीं है। मुअनजो-दड़ो क्या, हड़प्पा से लेकर हरियाणा तक समूची सिंधु सभ्यता में हथियार उस तरह कहीं नहीं मिले हैं जैसे किसी राजतंत्र में होते हैं। इस बात को लेकर विद्वान सिंधु सभ्यता में शासन या सामाजिक प्रबंध के तौर-तरीके को समझने की कोशिश कर रहे हैं। वहाँ अनुशासन ज़रूर था, पर ताकत के बल पर नहीं। वे मानते हैं कोई सैन्य सत्ता शायद यहाँ न रही हो। मगर कोई अनुशासन ज़रूर था जो नगर योजना, वास्तुशिल्प, मुहर-ठप्पों, पानी या साफ़-सफ़ाई जैसी सामाजिक व्यवस्थाओं आदि में एकरूपता तक को कायम रखे हुए था। दूसरी बात, जो सांस्कृतिक धरातल पर सिंधु घाटी सभ्यता को दूसरी सभ्यताओं से अलग ला खड़ा करती है, वह है प्रभुत्व या दिखावे के तेवर का नदारद होना।

दूसरी जगहों पर राजतंत्र या धर्मतंत्र की ताकत का प्रदर्शन करने वाले महल, उपासना-स्थल, मूर्तियाँ और पिरामिड आदि मिलते हैं। हड़प्पा संस्कृति में न भव्य राजप्रसाद मिले हैं, न मंदिर।

न राजाओं, महंतों की समाधियाँ। यहाँ के मूर्तिशिल्प छोटे हैं और औज़ार भी। मुअनजो-दड़ो के 'नरेश' के सिर पर जो 'मुकुट' है, शायद उससे छोटे सिरपेंच की कल्पना भी नहीं की जा सकती। और तो और, उन लोगों की नावें बनावट में मिस्र की नावों जैसी होते हुए भी आकार में छोटी रहीं। आज के मुहावरे में कह सकते हैं वह 'लो-प्रोफ़ाइल' सभ्यता थी; लघुता में भी महत्ता अनुभव करने वाली संस्कृति।

मुअनजो-दड़ो सिंधु सभ्यता का सबसे बड़ा शहर ही नहीं था, उसे साधनों और व्यवस्थाओं को देखते हुए सबसे समृद्ध भी माना गया है। फिर भी इसकी संपन्नता की बात कम हुई है तो शायद इसलिए कि उसमें भव्यता का आडंबर नहीं है। दूसरी वजह यह भी है कि मुअनजो-दड़ो और हड़प्पा पिछली सदी में ही उद्घाटित हो सके। उनकी अनबूझ लिपि अभी भी सारे रहस्य अपने में छिपाए हुए है।

नृत्य मुद्रा में लड़की 2500 ई. पूर्व

सिंधु घाटी के लोगों में कला या सुरुचि का महत्त्व ज़्यादा था। वास्तुकला या नगर-नियोजन ही नहीं, धातु और पत्थर की मूर्तियाँ, मृद्-भांड, उन पर चित्रित मनुष्य, वनस्पति और पशु-पक्षियों की छवियाँ, सुनिर्मित मुहरें, उन पर बारीकी से उत्कीर्ण आकृतियाँ, खिलौने, केश-विन्यास, आभूषण और सबसे ऊपर सुघड़ अक्षरों का लिपिरूप सिंधु सभ्यता को तकनीक-सिद्ध से ज़्यादा कला-सिद्ध ज़ाहिर करता है। एक पुरातत्त्ववेत्ता के मुताबिक सिंधु सभ्यता की खूबी उसका सौंदर्य-बोध है, "जो राज-पोषित या धर्म-पोषित न होकर समाज-पोषित था।" शायद इसीलिए आकार की भव्यता की जगह उसमें कला की भव्यता दिखाई देती है।

अजायबघर में रखी चीज़ों में कुछ सुइयाँ भी हैं। खुदाई में ताँबे और काँसे की तो बहुत सारी सुइयाँ मिली थीं। *काशीनाथ दीक्षित* को सोने की तीन सुइयाँ मिलीं जिनमें एक दो-इंच लंबी थी। समझा गया है कि यह बारीक कशीदेकारी[4] में काम आती होगी। याद करें, नर्तकी के अलावा मुअनजो-दड़ो के नाम से प्रसिद्ध जो दाढ़ी वाले 'नरेश' की मूर्ति है, उसके बदन पर आकर्षक

4. कपड़ों पर फूल / चित्र अंकित करने की कला

गुलकारी[5] वाला दुशाला भी है। आज छापे वाला कपड़ा 'अजरक' सिंध की खास पहचान बन गया है, पर कपड़ों पर छपाई का आविष्कार बहुत बाद का है। खुदाई में सुइयों के अलावा हाथीदाँत और ताँबे के सुए भी मिले हैं। जानकार मानते हैं कि इनसे शायद दरियाँ बुनी जाती थीं। हालाँकि दरी का कोई नमूना या साक्ष्य हासिल नहीं हुआ है।

वह शायद कभी हासिल न हो, क्योंकि मुअनजो-दड़ो में अब खुदाई बंद कर दी गई है। सिंधु के पानी के रिसाव से क्षार और दलदल की समस्या पैदा हो गई है। मौजूदा खंडहरों को बचाकर रखना ही अब अपने आप में बड़ी चुनौती है।

5. कशीदाकारी, कपड़ों पर फूल / चित्र अंकित करने की कला

अभ्यास

1. सिंधु-सभ्यता साधन-संपन्न थी, पर उसमें भव्यता का आडंबर नहीं था। कैसे?
2. 'सिंधु-सभ्यता की खूबी उसका सौंदर्य-बोध है जो राज-पोषित या धर्म-पोषित न होकर समाज-पोषित था।' ऐसा क्यों कहा गया?
3. पुरातत्त्व के किन चिह्नों के आधार पर आप यह कह सकते हैं कि–"सिंधु-सभ्यता ताकत से शासित होने की अपेक्षा समझ से अनुशासित सभ्यता थी।"
4. 'यह सच है कि यहाँ किसी आँगन की टूटी-फूटी सीढ़ियाँ अब आप को कहीं नहीं ले जातीं; वे आकाश की तरफ़ अधूरी रह जाती हैं। लेकिन उन अधूरे पायदानों पर खड़े होकर अनुभव किया जा सकता है कि आप दुनिया की छत पर हैं, वहाँ से आप इतिहास को नहीं उस के पार झाँक रहे हैं।' इस कथन के पीछे लेखक का क्या आशय है?
5. टूटे-फूटे खंडहर, सभ्यता और संस्कृति के इतिहास के साथ-साथ धड़कती ज़िंदगियों के अनछुए समयों का भी दस्तावेज़ होते हैं– इस कथन का भाव स्पष्ट कीजिए।
6. इस पाठ में एक ऐसे स्थान का वर्णन है जिसे बहुत कम लोगों ने देखा होगा, परंतु इससे आपके मन में उस नगर की एक तसवीर बनती है। किसी ऐसे ऐतिहासिक स्थल, जिसको आपने नज़दीक से देखा हो, का वर्णन अपने शब्दों में कीजिए।
7. नदी, कुएँ, स्नानागार और बेजोड़ निकासी व्यवस्था को देखते हुए लेखक पाठकों से प्रश्न पूछता है कि क्या हम सिंधु घाटी सभ्यता को **जल-संस्कृति** कह सकते हैं? आपका जवाब लेखक के पक्ष में है या विपक्ष में? तर्क दें।
8. सिंधु घाटी सभ्यता का कोई लिखित साक्ष्य नहीं मिला है। सिर्फ़ अवशेषों के आधार पर ही धारणा बनाई है। इस लेख में मुअनजो-दड़ो के बारे में जो धारणा व्यक्त की गई है। क्या आपके मन में इससे कोई भिन्न धारणा या भाव भी पैदा होता है? इन संभावनाओं पर कक्षा में समूह-चर्चा करें।

4

ऐन फ्रैंक

डायरी के पन्ने

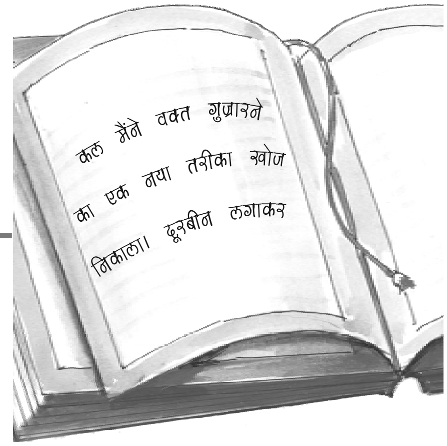

बुधवार, 8 जुलाई, 1942

प्यारी किट्टी,

ऐसा लग रहा है मानो रविवार के बाद से बरसों बीत गए हों। इतना कुछ हो गया है जैसे पूरी दुनिया ही उलट-पुलट गई है। लेकिन जैसा कि तुम देख सकती हो, किट्टी, मैं ज़िंदा हूँ, लेकिन यह मत पूछो कि कहाँ और कैसे। मैं जो कुछ भी कह रही हूँ उसमें शायद ही कोई बात तुम्हारे पल्ले पड़े, इसलिए मैं तुम्हें शुरू से बताती हूँ कि रविवार की दोपहर को क्या हुआ था।

तीन बजे थे। हैलो जा चुका था लेकिन वह दोबारा फिर से आने वाला था, तभी दरवाज़े की घंटी बजी। चूँकि मैं बाल्कनी में धूप में अलसाई सी बैठी पढ़ रही थी इसलिए मुझे घंटी की आवाज़ सुनाई नहीं दी। कुछ देर बाद रसोई के दरवाज़े पर मार्गोट नज़र आई। वह बहुत गुस्से में थी–पापा को ए.एस.एस. से बुलाए जाने का नोटिस मिला है, वह फुसफुसाई। माँ मिस्टर वान दान को देखने गई हुई हैं। मिस्टर वान दान पापा के बिजनेस पार्टनर हैं और उनके अच्छे दोस्त हैं।

मैं आवाक् रह गई थी।

बुलावा?

हर कोई जानता था कि बुलावे का क्या मतलब होता है। यातना शिविरों के नज़ारे और वहाँ की कोठरियों के दृश्य मेरी आँखों के आगे तैर गए। हम अपने पापा को इस तरह की नियति के भरोसे कैसे छोड़ सकते थे। हम उन्हें हर्गिज़ नहीं जाने देंगे। मार्गोट ने उस वक्त

कहा था जब वह ड्राइंग रूम में माँ की राह देख रही थी। माँ मिस्टर वान दान से पूछने गई हैं कि हम कल ही छुपने की जगह पर जा सकते हैं। वान दान परिवार भी हमारे साथ जा रहा है। हम लोग कुल मिलाकर सात लोग होंगे। मौन। हम आगे बात ही नहीं कर पाए। यह खयाल कि पापा यहूदी अस्पताल में किसी को देखने गए हुए हैं, माँ के लिए इंतज़ार की लंबी घड़ियाँ, गरमी, सस्पेंस, इन सारी चीज़ों ने हमारे शब्द ही हमसे छीन लिए थे। तभी दरवाज़े की घंटी बजी-यह हैलो ही होगा, मैंने कहा था।

दरवाज़ा मत खोलो, मार्गोट ने हैरान होते मुझे रोका, लेकिन इसकी ज़रूरत नहीं थी क्योंकि हमने नीचे से माँ और मिस्टर वान दान को हैलो से बात करते हुए सुन लिया था। तब दोनों ही भीतर आए और अपने पीछे दरवाज़ा बंद कर दिया। जब भी दरवाज़े की घंटी बजती तो मुझे या मार्गोट को उचककर नीचे देखना पड़ता कि क्या पापा आ गए हैं। हमने किसी और को भीतर नहीं आने दिया। मुझे और मार्गोट को बाहर भेज दिया गया था क्योंकि वान दान माँ से अकेले में बात करना चाहते थे। जब मैं और मार्गोट बेडरूम में बैठे बात कर रहे थे तो उसने मुझे बताया कि यह बुलावा पापा के लिए नहीं बल्कि खुद उसके लिए था। इस दूसरे सदमे से मैं तो चीखने लगी। मार्गोट सोलह बरस की थी। तय है कि वे लोग इस उम्र की लड़कियों को उनके खुद के भरोसे यहाँ से भेजना चाहते हैं। लेकिन भगवान का शुक्र है, वह नहीं जाएगी। माँ ने मुझसे यही कहा था। पापा जब मुझसे छिपने की जगह पर जाने की बात कर रहे थे तो उन्होंने भी शायद यही कहा होगा।

अज्ञातवास...हम कहाँ जाकर छुपेंगे? शहर में? किसी घर में? किसी परछत्ती पर? कब. ..कहाँ...कैसे...ये ऐसे सवाल थे जो मैं पूछ नहीं सकती थी लेकिन फिर भी ये सवाल मेरे दिमाग में कुलबुला रहे थे।

मार्गोट और मैंने अपनी बहुत ज़रूरी चीज़ें एक थैले में भरनी शुरू कीं।

मैंने सबसे पहले अपने थैले में यह डायरी ठूँसी। इसके बाद मैंने कर्लर, रुमाल, स्कूली किताबें, एक कंघी और कुछ पुरानी चिट्ठियाँ थैले में डालीं। मैं अज्ञातवास में जाने के खयाल से इतनी अधिक आतंकित थी कि मैंने थैले में अजीबोगरीब चीज़ें भर डालीं, फिर भी मुझे अफ़सोस नहीं है। स्मृतियाँ मेरे लिए पोशाकों की तुलना में ज़्यादा मायने रखती हैं। तब हमने मिस्टर क्लीमेन को फ़ोन किया कि क्या वे शाम को हमारे घर आ पाएँगे।

मिस्टर वान दान चले गए ताकि मिएप को लिवा ला सकें। मिएप आईं और वादा किया कि वे रात को एक बार फिर आएँगी। वे अपने साथ जूतों, ड्रेसों, जैकेटों, अंडरवियरों तथा स्टॉकिंग्स से भरा एक थैला लेकर गईं। इसके बाद हमारे फ़्लैट में सन्नाटा छा गया। हममें से किसी की भी खाना खाने की इच्छा ही नहीं हुई। मौसम अभी भी गरम था और सारी चीज़ें जैसे हमारे लिए अजनबी होती चली जा रही थीं।

हमने अपना ऊपर वाला एक बड़ा कमरा तीसेक बरस के एक विधुर मिस्टर *गोल्डश्मिड्ट* को किराए पर दे रखा था। तय था कि उसे उस शाम कोई काम धंधा नहीं था, इसके बावजूद–हमारे कई इशारों के बावजूद वह रात दस बजे तक वहीं पर मँडराता रहा। मिएप और जॉन गिएज रात ग्यारह बजे आए। मिएप 1933 से पापा की कंपनी में काम कर रही थीं और इसलिए पापा के करीबी दोस्तों में थीं। उसके पति जॉन भी पापा के अच्छे दोस्त थे। एक बार फिर जूते, स्टॉकिंग्स, अंडरवियर और किताबें मिएप के गहरे बैग और जॉन की जेबों में गायब हो रही थीं। साढ़े ग्यारह बजे वे खुद भी विदा लेकर चले गए। मैं बुरी तरह से थक गई थी, फिर भी एक बात मैं अच्छी तरह जानती थी कि यह रात मेरे अपने बिस्तर में मेरी आखिरी रात है। मैं जैसे घोड़े बेचकर सोई। मेरी नींद अगली सुबह साढ़े पाँच बजे मार्गोट के जगाने पर ही खुली। किस्मत से यह सुबह रविवार की तरह गरम नहीं थी। दिन भर गरम बरसात की फुहारें पड़ती रहीं। हम चारों ने अपने बदन पर इतने ज़्यादा कपड़े ले लिए थे मानो हम रात फ्रिज में गुज़ारने जा रहे हों। वजह सिर्फ़ इतनी-सी थी कि हम अपने साथ ज़्यादा से ज़्यादा कपड़े ले जाना चाहते थे। हम जिस स्थिति में थे उसमें कोई यहूदी व्यक्ति कपड़ों से भरा सूटकेस ले जाने के बारे में सोच भी नहीं सकता था। मैंने दो बनियानें, तीन पैंटें, एक ड्रेस और उसके ऊपर एक स्कर्ट, एक जैकेट, एक बरसाती, दो जोड़ी स्टॉकिंग्स, भारी जूते, एक केप, एक स्कार्फ़, और इन सबके अलावा और भी बहुत कुछ ओढ़-पहन रखा था। घर से निकलने से पहले ही मेरा दम घुटने लगा था लेकिन किसी को भी परवाह नहीं थी कि मुझसे पूछे–ऐन, कैसा लग रहा है तुम्हें?

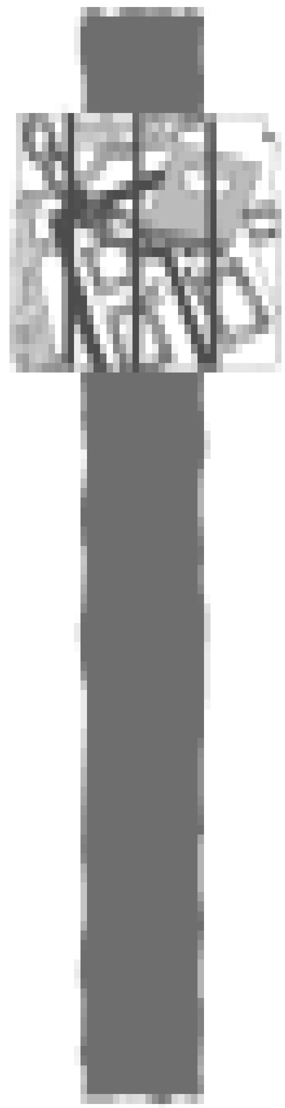

मार्गोट ने अपने थैले में स्कूल की किताबें ठूँस ली थीं और वह अपनी साइकिल लेने चली गई और फिर वह मिएप की निगरानी में अज्ञात जगह के लिए रवाना हो गई। कुछ भी रहा हो, मेरे लिए तो वह अनजान जगह ही थी; क्योंकि मुझे अभी भी पता नहीं था कि हम कहाँ जाने वाले हैं। साढ़े सात बजे हमने भी अपने पीछे दरवाज़ा बंद किया। मूर्जे ही एकमात्र ऐसी जीवित प्राणी थी

जिसे मुझे गुडबाई कहना था। हमने गोल्डश्मिड्ट के लिए जो नोट छोड़ा उसके अनुसार बिल्ली को पड़ोसियों के यहाँ छोड़ा जाना था। वे ही अब उसकी देखभाल करने वाले थे। खाली बिस्तरे, मेज़ पर बिखरा नाश्ते का सामान, रसोई में बिल्ली के लिए सेर भर मीट, ये सारी चीज़ें यही दर्शाती थीं कि हम बहुत ही हड़बड़ी में छोड़-छाड़कर गए हैं। लेकिन इंप्रैशन छोड़कर जाने में हमारी कोई दिलचस्पी नहीं थी। हम तो किसी भी तरह वहाँ से निकल जाना चाहते थे और कहीं सुरक्षित स्थान पर पहुँच जाना चाहते थे। और कोई बात मायने नहीं रखती थी।

बाकी कल,

तुम्हारी ऐन

गुरुवार, 9 जुलाई, 1942

प्यारी किट्टी,

तो आखिर हम चल पड़े। मम्मी, पापा और मैं तेज़ बरसात में भीगते हुए आए। हम तीनों के कंधों पर बड़े-बड़े थैले और शॅपिंग बैग थे जो अल्लम-गल्लम चीज़ों से ऊपर तक ठूँस-ठूँस कर भरे हुए थे। सुबह-सुबह काम पर जाने वाले लोग हमें बड़ी बेचारगी भरी निगाहों से देख रहे थे। आप उन्हें देखते ही बता सकते थे कि वे आपके लिए अफ़सोस कर रहे थे कि वे हमें किसी तरह का वाहन उपलब्ध नहीं करा सकते थे। हमारे सीने पर चमकता पीला सितारा[1] सारी दास्तान खुद ही कह देता था।

जब हम गली में पहुँच गए तभी पापा और मम्मी ने धीरे-धीरे बताना शुरू किया कि उनकी योजना क्या थी। पिछले कई महीनों के दौरान हम थोड़ा-थोड़ा करके जितना भी हो सका, फर्नीचर और कपड़े-लत्ते फ़्लैट से बाहर ले जाते रहे थे। यह तय कर लिया गया था कि हम लोग 16 जुलाई को अज्ञातवास में चले जाएँगे। अचानक मार्गोट के लिए बुलावा आ जाने के कारण योजना को दस दिन आगे खिसकाना पड़ा था। इसका मतलब यही था कि अब हमें कम तैयार किए गए कमरों में ही गुज़ारा करना होगा।

छिपने की जगह पापा के ऑफ़िस की इमारत में ही थी। इसे समझ पाना बाहर वालों के लिए थोड़ा मुश्किल होगा इसलिए मैं थोड़ा बहुत समझा देती हूँ। पापा के ऑफ़िस में काम करने वाले लोग बहुत ज़्यादा नहीं थे। बस, मिस्टर कुगलर, मिस्टर क्लीमेन, मिएप और तेइस बरस की टाइपिस्ट जिसका नाम बेप वोस्कुइल था। उन सबको हमारे आने के बारे में खबर

1. हिटलर के शासन में यहूदियों को विवश किया गया था कि वे अपनी पहचान के लिए पीला सितारा पहनें

कर दी गई थी। मिस्टर वोस्कुइल, बेप के पिता, दो और सहायकों के साथ गोदाम में काम करते थे, उन्हें कुछ भी नहीं बताया गया था।

इमारत के बारे में थोड़ा-सा बता दूँ। तल मंज़िल पर बना बड़ा-सा गोदाम काम करने की जगह और भंडार घर के रूप में इस्तेमाल होता है। इसके अलग-अलग हिस्से बने हुए हैं। ये हिस्से गोदाम, पिसाई का कमरा वगैरह हैं जहाँ इलायची, लौंग और काली मिर्च वगैरह पीसे जाते हैं।

गोदाम के दरवाज़े से ही सटा हुआ एक बाहर का दरवाज़ा है जो ऑफ़िस का प्रवेशद्वार है। ऑफ़िस के दरवाज़े के एकदम अंदर की तरफ़ एक दूसरा दरवाज़ा है और उसके पीछे सीढ़ियाँ हैं। सीढ़ियाँ ऊपर चढ़ें तो एक और दरवाज़ा आता है, जिस पर आर-पार दिखाई न देने वाले काँच की खिड़की लगी है। इस पर काले अक्षरों में 'कार्यालय' लिखा हुआ है। यही आगे वाला बड़ा यानी फ्रंट ऑफ़िस है–ये बहुत बड़ा हवादार और खूब रौशनी वाला कमरा है। दिन के दौरान यहाँ बेप, मिएप और मिस्टर क्लीमेन काम करते हैं। एक छोटा-सा गलियारा है जिसमें तिजोरी, कपड़ों की अलमारी और स्टेशनरी की बड़ी-सी अलमारी है। इस गलियारे के पार एक छोटा-सा दमघोंटू, अँधियारा कमरा है–यह बैक ऑफ़िस है, इसमें मिस्टर कुगलर और मिस्टर वानदान बैठा करते थे। अब इसमें सिर्फ़ मिस्टर कुगलर बैठते हैं। मिस्टर कुगलर के ऑफ़िस में पैसेज से भी पहुँचा जा सकता है, लेकिन सिर्फ़ काँच वाले दरवाज़े के ज़रिये जिसे अंदर से तो आसानी से खोला जा सकता है, लेकिन बाहर से इतनी आसानी से नहीं। मिस्टर कुगलर के ऑफ़िस से निकलने के बाद तुम लंबे, तंग गलियारे से कोयले वाले गोदाम की ओर बढ़ोगी और चार सीढ़ियाँ चढ़ोगी तो तुम अपने आपको प्राइवेट ऑफ़िस में पाओगी। यह पूरी इमारत का शो पीस है। शानदार महोगनी फ़र्नीचर, लिनोलियम का फ़र्श, जिस पर कालीन बिछा है, एक रेडियो है, आकर्षक लैंप हैं। सब कुछ उत्तम दरजे का। इसके साथ वाला कमरा बहुत बड़ा रसोईघर है। उसमें पानी गरम करने का हीटर है, गैस के दो चूल्हे हैं, साथ में पाखाना है। ये पहली मंज़िल का नक्शा है। नीचे की सीढ़ियों वाले गलियारे से एक रास्ता दूसरी मंज़िल की तरफ़ जाता है। सीढ़ियाँ खतम होते ही थोड़ी खुली जगह है और उसके दोनों तरफ़ दरवाज़े हैं। दाईं तरफ़ का दरवाज़ा मसाले रखने के स्टोर, अटारी और घर के सामने की तरफ़ वाली मियानी की तरफ़ जाता है। घर के सामने की तरफ़ से एक परंपरागत डच डिज़ाइन की, सीधी और इतनी घुमावदार सीढ़ियाँ हैं कि एड़ियों में मोच आ जाए। यह रास्ता गली की तरफ़ खुलता है।

सीढ़ियों के ऊपर बनी जगह से दाईं तरफ़ का दरवाज़ा घर के पिछवाड़े की तरफ़ हमारी गुप्त एनेक्सी की तरफ़ जाता है। कोई कल्पना भी नहीं कर सकता था कि इस सपाट मटमैले दरवाज़े के पीछे इतने कमरे भी हो सकते हैं। दरवाज़े के आगे सीढ़ी का बस, एक ही पायदान है। इसे पार करते ही आप भीतर होते हैं। आपके सामने ही कई सीढ़ियाँ ऊपर की तरफ़ चली जाती हैं। बाईं तरफ़ एक तंग-सा गलियारा है जो एक बड़े कमरे में जाकर खुलता है। यही कमरा फ्रैंक परिवार के लिए ड्राइंगरूम और बेडरूम का काम करता है। अगला दरवाज़ा एक छोटे कमरे का है। यह परिवार की दो जवान लड़कियों के बैडरूम और स्टडीरूम के काम आता है। सीढ़ियों की दाईं तरफ़ गुसलखाना और बिना खिड़कियों वाला एक कमरा है जिसमें एक वॉश बेसिन लगा हुआ है। किनारे की तरफ़ वाले दरवाज़े से पाखाने की तरफ़ और दूसरे

दरवाज़े से मेरे और मार्गोट के कमरे की तरफ़ जाया जा सकता है। यदि आप और सीढ़ियाँ चढ़कर बिलकुल ऊपर तक चले जाएँ तो आप नहर के किनारे बने इस पुराने मकान में ऊपर एक बहुत बड़ा, खुला-खुला और हवादार कमरा देखकर हैरान रह जाएँगे। इसमें एक गैस का चूल्हा है और एक सिंक है। (भगवान का शुक्र है कि यह मिस्टर कुलगर की प्रयोगशाला के काम आता था।) यह मिस्टर और मिसेज़ वान दान का बेडरूम और रसोईघर होगा। इसे कॉमन कमरे, डाइनिंगरूम और हम सबके लिए स्टडी के लिए भी इस्तेमाल किया जा सकेगा। एक छोटा-सा कमरा पीटर वान दान के लिए बेडरूम का काम करेगा। और फिर जैसी इमारत के सामने की तरफ़ है, वैसी ही अटारी और मियानी यहाँ भी हैं, तो ये रहा हमारा नया गरीबखाना। लो, मैंने तुम्हें पूरी इमारत की सैर करवा दी।

तुम्हारी, ऐन

शुक्रवार, 10 जुलाई, 1942

मेरी प्यारी किट्टी,

मैंने घर के लंबे-चौड़े बखान के साथ हो सकता है तुम्हें बोर कर दिया हो लेकिन मैं अभी भी यही सोचती हूँ कि तुम जानो, हम कहाँ आ पहुँचे हैं। मैं यहाँ कैसे आ पहुँची हूँ, इसके बारे में तुम्हें मेरे आगे के पत्रों से पता चलेगा।

लेकिन पहले मैं अपना किस्सा जारी रखूँगी। मैंने अभी तक अपनी बात पूरी नहीं की है। 263 प्रिंसेनग्रास्ट में हमारे पहुँचने पर मिएप तुरंत हमें लंबे गलियारे से सीढ़ियों से ऊपर दूसरी मंज़िल पर और फिर एनेक्सी में ले आई। उसने हमें अकेला छोड़ा और हमारे पीछे दरवाज़ा बंद कर दिया। मार्गोट अपनी साइकिल पर पहले ही आ चुकी थी और हमारी राह देख रही थी।

हमारी बैठक और दूसरे कमरे सामान से ठुँसे पड़े थे। कहीं तिल धरने की जगह नहीं थी। पिछले महीनों में जो कार्ड-बोर्ड के बक्से ऑफ़िस में भेजे गए थे, चारों तरफ़ फ़र्श पर, बिस्तरों पर फैले पड़े थे। छोटा कमरा फ़र्श से छत तक कपड़ों से अटा पड़ा था। उस रात अगर हम ढंग से सोने के बारे में सोचते तो ये सारा सामान

तरतीब से लगाने की ज़रूरत थी। हमें सफ़ाई का काम तुरंत शुरू कर देना था। माँ और मार्गोट की तो हाथ हिलाने की भी हिम्मत नहीं थी। वे बिना चादरों वाली गद्दियों पर ही पसर गईं। थकी, बेहाल और पस्त। लेकिन पापा और मैंने सफ़ाई का मोर्चा सँभाला और तुरंत जुट गए।

हम सारा दिन पैकिंग खोलते रहे, अलमारियाँ भरते रहे, कीलें ठोकते रहे और तमाम सामान ठिकाने से लगाते रहे। आखिर थक कर चूर हो गए और साफ़ बिस्तरों पर ढह गए। हमने पूरे दिन में एक बार भी गरम खाना नहीं खाया था। लेकिन परवाह किसे थी। माँ और मार्गोट की थकान के मारे बुरी हालत थी और पापा और मुझे फ़ुर्सत नहीं थी।

मंगलवार की सुबह हमने पिछली रात के छोड़े हुए काम को पूरा करना शुरू किया। बेप और मिएप हमारे राशन कूपनों से शॉपिंग करने गईं और पापा ने ब्लैक आउट वाले परदे लगाए। मैंने रसोई का फ़र्श रगड़-रगड़ कर साफ़ किया। सवेरे से रात तक हम लगातार काम में जुटे रहे।

बुधवार तक तो मुझे यह सोचने की फ़ुर्सत ही नहीं मिली कि मेरी ज़िंदगी में कितना बड़ा परिवर्तन आ चुका है। अब गुप्त एनेक्सी में आने के बाद पहली बार मुझे थोड़ी फ़ुर्सत मिली कि तुम्हें बताऊँ कि मेरी जिंदगी में क्या हो चुका है और क्या होने जा रहा है।

तुम्हारी, ऐन

शनिवार, 28 नवंबर, 1942

मेरी प्यारी किट्टी,

हम इन दिनों बिजली का बहुत ज़्यादा इस्तेमाल करते रहे हैं और अपने राशन से ज़्यादा खर्च कर चुके हैं। नतीजा यह होगा कि और अधिक किफ़ायत, और हो सकता है, बिजली भी कट जाए। एक पखवाड़े के लिए कोई बिजली नहीं, कितना मज़ेदार खयाल है, नहीं क्या? लेकिन कौन जानता है, यह अरसा इससे कम भी हो सकता है। बहुत अँधेरा हो जाता है चार, साढ़े चार बजते ही। हम तब पढ़ नहीं सकते। इसलिए वह वक्त हम ऊल-जुलूल हरकतें करके गुज़ारते हैं। हम पहेलियाँ बुझाते हैं, अँधेरे में व्यायाम करते हैं, अंग्रेज़ी या फ्रेंच बोलते हैं और किताबों की समीक्षा करते हैं। हम कुछ भी करें, थोड़ी देर बाद बोर लगने लगता है। कल मैंने वक्त गुज़ारने का एक नया तरीका खोज निकाला। दूरबीन लगाकर पड़ोसियों के रोशनी वाले कमरों में झाँकना। दिन के वक्त हमारे परदे हटाए नहीं जा सकते, एक इंच भर भी नहीं, लेकिन जब अँधेरा हो तो परदे हटाने में कोई हर्ज नहीं होता।

मुझे पता नहीं था कि हमारे पड़ोस में इतने दिलचस्प लोग रहते हैं। खैर, हमारे पड़ोसी हैं। मैंने जो पड़ोसी देखे– उनमें से एक परिवार डिनर कर रहा था, एक परिवार फ़िल्म बना रहा था तो सामने वाले घर में एक दंत चिकित्सक एक डरी हुई बुढ़िया से जूझ रहा था।

मिस्टर डसेल जिनके बारे में कहा गया था कि उनकी बच्चों के साथ बहुत पटती है और वे उन्हें खूब प्यार करते हैं, दरअसल बाबा आदम के ज़माने के अनुशासन मास्टर हैं और लंबे-लंबे भाषण देने लगते हैं जिन्हें सुनकर ही नींद आने लगे। चूँकि मुझ अकेली को ही यह सुख(?)मिला हुआ है कि मैं उनके साथ, महाराज डसेल के साथ यह लंबोतरा, सँकरा कमरा शेअर करती हूँ, और चूँकि मुझे ही, हम तीन बच्चों में आमतौर पर खरदिमाग और तुनकमिज़ाज समझा जाता है, मेरे पास यही एक उपाय बचता है कि उनकी वही पुरानी डाँट-फटकार और भाषणों की लंबी-लंबी उबाऊ श्रृंखला की तरफ़ कान न धरूँ। न सुनने का नाटक करती रहूँ। ये बात तो खैर मैं फिर भी सहन कर लेती लेकिन मिस्टर डसेल अच्छे-खासे चुगलखोर हैं।

वे जाकर इन सारी बातों की रिपोर्ट मम्मी को दे आते हैं। अगर मिस्टर डसेल ने मुझे कोई उपदेश पिलाया होता है तो उसे दोबारा से मुझे मम्मी से सुनना पड़ता है और मम्मी तो कोई लिहाज़ भी नहीं करती मेरा, और अगर मेरी किस्मत वाकई अच्छी होती है तो मिसेज़ वान मुझे पाँच मिनट बाद बुलवा भेजती हैं।

सचमुच, मीन-मेख निकालने वाले परिवार में आप केंद्र में हों और सारा दिन आपको, हर तरफ़ से दुत्कारा फटकारा जाए—ये सब झेलना आसान काम नहीं होता।

रात को जब मैं बिस्तर पर होती हूँ तो अपने पापों और बढ़ा-चढ़ाकर बताई गई अपनी खामियों के बारे में सोचती हूँ तो वे इतनी ज़्यादा होती हैं कि अपने मूड के हिसाब से या तो मैं उन पर हँस सकती हूँ या रो ही सकती हूँ। तब मैं इस अजीब से खयाल के साथ सो जाती हूँ कि मैं जो कुछ हूँ, उससे अलग होना चाहती हूँ या मैं उससे अलग तरीके से व्यवहार करना चाहती हूँ जो मैं हूँ या जो मैं होना चाहती हूँ।

ऐन फ्रैंक की डायरी का एक पन्ना

मेरी प्यारी किट्टी, अब मैं तुम्हें कितना उलझा रही हूँ। लेकिन मैं चीज़ें एक बार लिखकर उन्हें काटना पसंद नहीं करती और इस कमी वाले वक्त में कागज़ को मोड़-तोड़ कर रद्दी की टोकरी में डाल देना बिलकुल मना है। इसलिए मैं तुम्हें सिर्फ़ यही सलाह दे सकती हूँ कि तुम ऊपर वाले हिस्से को फिर से पढ़ने की कोशिश मत करना; क्योंकि इसमें तुम्हें बात का सिर-पैर भी नहीं मिलेगा।

तुम्हारी, ऐन

शुक्रवार, 19 मार्च, 1943

मेरी प्यारी किट्टी,

अभी एक घंटा भी नहीं बीता था कि हमारी खुशी निराशा में बदल गई। टर्की अभी युद्ध में शामिल नहीं हुआ है। हुआ यह था कि एक केंद्रीय मंत्री ने यह कहा था कि टर्की

जल्दी ही तटस्थता छोड़ देगा। डैम चौक पर अखबार बेचने वाला चिल्ला रहा था; 'टर्की इंग्लैंड के पक्ष में'। अखबार उसके हाथ से झपटे जा रहे थे, और इस तरह से हमने वह उत्साहवर्धक अफ़वाह सुनी थी।

हज़ार गिल्डर के नोट अवैध मुद्रा घोषित किए जा रहे हैं। यह ब्लैक मार्केट का धंधा करने वालों और उन जैसे लोगों के लिए बहुत बड़ा झटका होगा, लेकिन उससे बड़ा संकट उन लोगों का है जो या तो भूमिगत हैं या जो अपने धन का हिसाब-किताब नहीं दे सकते। हज़ार गिल्डर का नोट बदलवाने के लिए आप इस स्थिति में हों कि ये नोट आपके पास आया कैसे और उसका सुबूत भी देना होगा। इन्हें कर अदा करने के लिए उपयोग में लाया जा सकता है; लेकिन अगले हफ़्ते तक ही। पाँच सौ गिल्डर के नोट भी तभी बेकार हो जाएँगे। गिएज एंड कंपनी के पास अभी हज़ार गिल्डर के कुछ नोट बाकी थे जिनका कोई हिसाब-किताब नहीं था। इन्हें कंपनी ने आगामी वर्षों के लिए अनुमानित कर अदायगी में निपटा दिया है। इसलिए फ़िलहाल तो गर्दन पानी के ऊपर ही है।

मिस्टर डसेल को कहीं से बाबा आदम के ज़माने की पैरों से चलने वाली दाँतों की ड्रिल मशीन मिल गई है। इसका मतलब, संभवत: जल्दी ही मेरे दाँतों का पूरा चेक-अप हो पाएगा।

जब घर के कायदे-कानून मानने की बात आती है तो मिस्टर डसेल भयंकर रूप से आलस दिखाते हैं। न केवल वे चार्लोट से पत्राचार कर रहे हैं, और भी कई दूसरे लोगों के साथ भी चिट्ठी-पत्री बनाए हुए हैं। मार्गोट, जो कि उनकी डच अध्यापिका हैं, उनके ये पत्र ठीक करती हैं। पापा ने उन्हें मना किया है कि वे ये सब कारोबार बंद करें और मार्गोट ने उनके पत्र ठीक करने बंद कर दिए हैं। लेकिन मुझे लगता है, वे अपनी चिट्ठी-पत्री फिर से शुरू कर देंगे।

जनाब हिटलर घायल सैनिकों से बातचीत कर रहे हैं। हमने उन्हें रेडियो पर सुना। सचमुच यह सब कुछ करुणाजनक था। सवालों-जवाबों का सिलसिला इस तरह से चल रहा था :

'मेरा नाम हैनरिक शापेल है।'

'आप कहाँ जख्मी हुए थे?'

'स्नालिनग्राद के पास।'

'किस किस्म का घाव है यह?'

'दोनों पाँव बरफ़ की वजह से गल गए हैं और बाएँ बाज़ू में हड्डी टूट गई है।'

ये बातें जस की तस दे रही हूँ जो मैंने रेडियो पर कठपुतलियों के खेल की तरह सुनीं। घायल सैनिक जैसे अपने ज़ख्मों को दिखाते हुए गर्व महसूस कर रहे थे। जितने ज़्यादा घाव, उतना ज़्यादा गर्व। उनमें से एक तो हिटलर से हाथ मिलाने के खयाल से ही इतना उत्साहित हुआ जा रहा था (मेरे खयाल से तो अभी भी वह उसी उत्साह में होगा) कि वह एक शब्द भी नहीं बोल पाया।

मुझसे डसेल साहब का साबुन ज़मीन पर गिर गया था। मेरी किस्मत खराब थी कि मेरा पैर उस पर पड़ गया। अब पूरा साबुन ही गायब है। मैंने पापा से कहा है कि मिस्टर डसेल को इसकी भरपाई कर दें। उनको हर महीने युद्ध के समय के घटिया साबुन की एक ही बट्टी मिलती है।

तुम्हारी, ऐन

शुक्रवार, 23 जनवरी, 1944

मेरी प्यारी किट्टी,

इधर के सप्ताहों में मुझे परिवार के वंश वृक्षों और राजसी परिवारों की वंशावली तालिकाओं में खासी रुचि हो गई है। मैं इस नतीजे पर पहुँची हूँ कि एक बार तुम खोजना शुरू कर दो तो तुम्हें अतीत में गहरे, और गहरे उतरना पड़ेगा। इस खोज से तुम्हारे हाथ और भी रोचक जानकारियाँ लगेंगी।

हालाँकि जब मेरे स्कूल के काम की बात आती है तो मैं बहुत मेहनत करती हूँ और रेडियो पर बी.बी.सी. की होम सर्विस को समझ सकती हूँ, इसके बावजूद मैं अपने ज़्यादातर रविवार अपने प्रिय फ़िल्मी कलाकारों की तसवीरें अलग करने और देखने में गुज़ारती हूँ। यह संग्रह अच्छा-खासा हो चुका है। मिस्टर कुगलर मुझ पर हर सोमवार कुछ ज़्यादा ही मेहरबान होते हैं और मेरे लिए सिनेमा एंड थियेटर पत्रिका की प्रति लेते आते हैं। इस घर-परिवार के ऐसे लोग भी, जो ज़रा भी दुनियादार नहीं हैं, इसे पैसों की बरबादी मानते हैं लेकिन इस बात पर हैरान भी होते हैं कि कैसे मैं एक साल के बाद भी किसी फ़िल्म के सभी कलाकारों के नाम ऊपर से नीचे तक सही-सही बता सकती हूँ। बेप जो अकसर छुट्टी के दिन अपने बॉयफ्रेंड के साथ फ़िल्म देखने जाती है, शनिवार को ही मुझे बता देती है कि वे कौन सी फ़िल्म देखने जा रहे हैं, तो मैं फ़िल्म के मुख्य नायकों और नायिकाओं के नाम तथा समीक्षाएँ फ़र्राटे से बोलना शुरू कर देती हूँ। हाल ही में मम्मी ने फ़िकरा कसा कि मुझे बाद में फ़िल्में

देखने जाने की ज़रूरत ही नहीं पड़ेगी, क्योंकि मुझे सारी फ़िल्मों की कहानियाँ, नायकों के नाम तथा समीक्षाएँ ज़बानी याद हैं।

जब भी मैं नयी केश सज्जा बनाकर बाहर आती हूँ, मैं सबके चेहरों पर उग आई असहमति साफ़-साफ़ पढ़ सकती हूँ। और यह भी बता सकती हूँ कि कोई न कोई ज़रूर टोक देगा कि मैं फलाँ फ़िल्म स्टार की नकल कर रही हूँ। मेरा यह जवाब कि ये स्टाइल मेरा खुद का आविष्कार है, मज़ाक के रूप में लिया जाता है। जहाँ तक मेरे हेयर स्टाइल का सवाल है, यह आधे घंटे से ज़्यादा नहीं टिका रहता। तब तक मैं उससे बोर हो चुकी होती हूँ और सबकी टिप्पणियाँ सुनते-सुनते मेरे कान पकने लगते हैं। मैं सीधे गुसलखाने की तरफ़ लपकती हूँ और मेरे बाल फिर से पहले की तरह उलझे हुए घुँघराले हो जाते हैं।

तुम्हारी, ऐन

बुधवार, 28 जनवरी, 1944

मेरी प्यारी किट्टी,

आज सुबह मैं सोच रही थी कि क्या तुमने अपने आपको कभी गाय समझा है जिसे हर दिन मेरी बासी खबरें बार-बार चबानी पड़ती हैं। इनकी इतनी अधिक जुगाली कि तुम्हें उबासी आ जाए और तुम मन ही मन कामना करो कि ऐन कुछ नए समाचार दे।

सॉरी, तुम्हें ये नाली के सड़ते पानी की तरह नीरस लगता होगा। लेकिन ज़रा मेरी हालत की कल्पना करो जिसे रोज़-रोज़ यही सुनना पड़ता है। अगर खाने के वक्त बातचीत राजनीति या अच्छे खाने के बारे में नहीं हो रही होती तो मम्मी या मिसेज़ वान दान अपने बचपन की उन कहानियों को लेकर बैठ जाती हैं जो हम हज़ार बार सुन चुके हैं या फिर डसेल शुरू हो जाते हैं खूबसूरत रेस के घोड़े, उनकी चार्लोट का महँगा वॉर्डरोब, लीक करती नावें, चार बरस की उम्र में तैर सकने वाले बच्चे, दर्द करती माँसपेशियाँ और डरे हुए मरीज़—ये सब किस्से। इन सारी बातों का निचोड़ ये है: जब भी हम आठों में से कोई भी अपना मुँह खोलता है, बाकी सातों उसके लिए कहानी पूरी कर सकते हैं। किसी भी लतीफ़े को सुनने से पहले ही हमें उसकी पंच लाइन पता होती है। नतीजा यह

होता है कि लतीफ़ा सुनाने वाले को अकेले हँसना पड़ता है। अलग-अलग ग्वाले, राशनवाले, कसाई जो घरों की इन दो भूतपूर्व मालकिनों के संपर्क में आए, इतनी बार उनके चरित्र-चित्रण हो चुके हैं कि हमारी कल्पना शक्ति में उनमें जोड़ने के लिए कुछ भी नहीं बचा। एनेक्सी की यह हालत है कि यहाँ नया या ताज़ा सुनने-सुनाने को कुछ भी नहीं बचा है।

फिर भी, इन सारी चीज़ों में ताज़ा सुनने-सुनाने को कुछ भी नहीं बचा है। लोगों को नमक-मिर्च लगाकर वह सब कुछ दोहराने की आदत न होती जो मिस्टर क्लीमेन, जॉन, मिएप पहले ही बता चुके होते हैं। कई बार मैं मेज़ के नीचे अपने आपको खुद चिकोटी काट कर रोके रहती हूँ कि कहीं किसी को टोक न दूँ। छोटे बच्चे, खासकर ऐन कभी भी किसी बड़े को टोकने, सही लाइन पर लाने की हिमाकत न करें। भले ही उनकी गाड़ी पटरी से उतरी जा रही हो या उनकी कल्पनाशक्ति का दिवाला पिट चुका हो।

जॉन और मिस्टर क्लीमेन को अज्ञातवास में छुपे या भूमिगत हो गए लोगों के बारे में बात करना अच्छा लगता है। वे जानते हैं कि हम अपने जैसी हालत में जी रहे लोगों की बातें जानने के इच्छुक हैं। हमें उन सबकी तकलीफ़ों से हमदर्दी है जो गिरफ़्तार हो गए हैं और उन लोगों की खुशी में हमारी खुशी है जो कैद से आज़ाद कर दिए गए हैं। भूमिगत होना और अज्ञातवास में चले जाना तो अब आम बात हो गई है। हाँ कई प्रतिरोधी दल भी हैं, जैसे फ्री नीदरलैंड्स जो नकली पहचानपत्र बनाते हैं, अज्ञातवास में छुपे लोगों को वित्तीय सहायता देते हैं, युवा ईसाइयों के लिए काम तलाशते हैं। कितनी हैरानी की बात है कि ये लोग अपनी जान जोखिम में डालकर दूसरों की मदद के लिए कितना काम कर रहे हैं। इसका सबसे बढ़िया उदाहरण हमारी मदद करने वालों का है, जो हमारी आज तक मदद करते आए हैं और उम्मीद तो यही है कि वे हमें सुरक्षित किनारे तक ले आएँगे। इसका कारण यह है कि अगर वे ऐसा नहीं करते तो उनकी किस्मत भी हमारी जैसी हो जाएगी। उन्होंने कभी नहीं कहा कि हम उनके लिए मुसीबत हैं। वे रोज़ाना ऊपर आते हैं, पुरुषों से कारोबार और राजनीति की बात करते हैं, महिलाओं से खाने और युद्ध के समय की मुश्किलों की बात करते हैं, बच्चों से किताबों और अखबारों की बात करते हैं। वे हमेशा खुशदिल दिखने की कोशिश करते हैं, जन्मदिनों और दूसरे मौकों पर फूल और उपहार लाते हैं। हमेशा हर संभव मदद करते हैं। हमें ये बात कभी भी नहीं भूलनी चाहिए। ऐसे में जब दूसरे लोग जर्मनों के खिलाफ़ युद्ध में बहादुरी दिखा रहे हैं, हमारे मददगार रोज़ाना अपनी बेहतरीन भावनाओं और प्यार से हमारा दिल जीत रहे हैं।

अजीब-अजीब कहानियाँ चल रही हैं। उनमें काफ़ी सच भी हैं। अभी मिस्टर क्लीमेन गेल्डरलैंड में भूमिगत हो चुके आदमियों और पुलिसवालों के बीच हुए फ़ुटबाल मैच का ज़िक्र कर रहे थे, हिल्वरसम में नए राशनकार्ड जारी किए गए। (ऐसे लोगों को, जो अज्ञातवास में रह रहे हैं, राशन खरीदने की सुविधा हो सके) अगर राशनकार्ड न हो तो एक कार्ड के

लिए 60 गिल्डर देने पड़ते हैं। ज़िले में अज्ञातवास में रह रहे सभी लोगों से रजिस्ट्रार ने आग्रह किया कि वे फ़लाँ दिन एक अलग मेज़ पर आकर अपने कार्ड ले जाएँ।

इस सबके साथ ये भी खयाल रखना पड़ता है कि इस तरह की चालाकियों की जर्मनों को हवा भी न लगे।

तुम्हारी, ऐन

बुधवार, 29 मार्च, 1944

मेरी प्यारी किट्टी,

कैबिनट मंत्री मिस्टर बोल्के स्टीन ने लंदन से डच प्रसारण में कहा कि युद्ध के बाद युद्ध का वर्णन करने वाली डायरियों और पत्रों का संग्रह किया जाएगा। और फिर हर कोई मेरी डायरी पर झपट पड़ा। सोचो, ये कितना दिलचस्प होगा जब मैं इस गुप्त एनेक्सी के बारे में छपवाऊँगी। उसका शीर्षक ही ऐसा होगा कि लोग इसे एक जासूसी कहानी समझेंगे।

मैं सही बता रही हूँ, युद्ध के दस साल बाद लोग इससे कितना चकित होंगे कि जब उन्हें पता चलेगा कि हम लोग कैसे रहते थे, हम क्या खाते थे और यहूदियों के रूप में अज्ञातवास में हम क्या-क्या बातें करते थे। हालाँकि मैं तुम्हें इस जीवन के बारे में काफ़ी-कुछ बता चुकी हूँ, फिर भी तुम अभी भी थोड़ा-सा ही जान पाई हो। हवाई हमले के दौरान औरतें कैसी डर जाती हैं; अब देखो ना, पिछले रविवार जब 350 ब्रिटिश वायुयानों ने इज्मुईडेन पर 550 टन गोला-बारूद बरसाया तो हमारे घर ऐसे काँप रहे थे जैसे हवा में घास की पत्तियाँ। या हमारे इन घरों में कैसी महामारियाँ फैली हुई हैं।

तुम्हें इस सबकी कुछ खबर नहीं है। सब कुछ तुम्हें बताने में पूरा दिन लग जाएगा। लोगों को सब्ज़ियों और सभी प्रकार के सामानों के लिए लाइनों में खड़े होना पड़ता है; डॉक्टर अपने मरीज़ों को नहीं देख पाते, क्योंकि उन्होंने पीठ मोड़ी नहीं कि उनकी कारें और मोटर साइकिलें चुरा ली जाती हैं, चोरी-चकारी इतनी बढ़ गई है कि डच लोगों में अँगूठी पहनने का रिवाज़ तक नहीं रह गया है।

छोटे-छोटे बच्चे आठ-आठ, दस-दस बरस के होंगे लेकिन लोगों के घरों की खिड़कियाँ तोड़ कर घुस जाते हैं और जो भी हाथ लगा, उठा ले जाते हैं। लोग पाँच मिनट के लिए भी अपना घर छोड़ने की हिम्मत नहीं कर सकते हैं, क्योंकि लौटने पर उन्हें घर में झाड़ू फिरी मिलेगी। चोरी गए टाइपराइटरों, ईरानी कालीनों, बिजली से चलने वाली घड़ियों, कपड़ों आदि को लौटाने के लिए अखबारों में इनाम के विज्ञापन आए दिन पढ़ने को मिलते हैं। गली-गली नुक्कड़ों पर लगी बिजली से चलने वाली घड़ियाँ लोग उतार ले गए और सार्वजनिक टेलीफ़ोनों का पुर्ज़ा-पुर्ज़ा गायब हो चुका है।

डचों की नैतिकता अच्छी नहीं है। सब भूखे हैं; नकली कॉफ़ी को छोड़ दो तो एक हफ़्ते का राशन दो दिन भी नहीं चल पाता। अभी और क्या देखना बाकी है, पुरुषों को जर्मनी भेजा जा रहा है, बच्चे बीमार हैं या फिर भूख से बेहाल हैं; सब लोग फटे-पुराने कपड़े और घिसे-पिटे जूते पहनकर काम चला रहे हैं। ब्लैक मार्केट में जूते का नया तला 7.50 गिल्डर का मिलता है। इसके अलावा बहुत कम मोची मरम्मत का काम कर रहे हैं, यदि वे करते भी हैं तो चार महीने इंतज़ार करना पड़ेगा और इस बीच जूता गायब हो चुका होगा।

इसका एक लाभ भी हुआ है, खाना जितना खराब होता जा रहा है बिक्री उतनी ही गंभीर हो रही है; सरकारी लोगों पर हमले की घटनाएँ बढ़ती जा रही हैं। खाद्य कार्यालय, पुलिस, अधिकारी- सभी या तो अपने साथी नागरिकों की मदद कर रहे हैं या उन पर कोई आरोप लगाकर जेल में भेज देते हैं। सौभाग्य से बहुत कम डच लोग गलत पक्ष में हैं।

तुम्हारी, ऐन

मंगलवार, 11 अप्रैल, 1944

मेरी प्यारी किट्टी,

मेरा सिर घूम रहा है। समझ में नहीं आ रहा, कहाँ से शुरू करूँ। गुरुवार (जब मैंने तुम्हें पिछली बार लिखा था) सब कुछ ठीक-ठाक था। शुक्रवार (गुड फ्राइडे) हम मोनापोली खेल खेलते रहे। शनिवार भी हम यही खेल खेले। दिन पता ही नहीं चला, कैसे बीत गए। शनिवार कोई दो बजे का वक्त रहा होगा, तेज़ गोलाबारी शुरू हो गई। मशीनगनें चल रही थीं। मर्द लोगों का यही कहना था। बाकी लोगों के लिए सब कुछ शांत था।

रविवार दोपहर के वक्त मेरे आमंत्रण पर पीटर साढ़े चार बजे मुझसे मिलने के लिए आया। सवा पाँच बजे हम ऊपर सामने वाली अटारी पर चले गए। वहाँ हम छः बजे तक रहे। छः बजे से सवा सात बजे तक रेडियो पर बहुत ही खूबसूरत मोत्ज़ार्ट संगीत बज रहा था। मुझे रात्रि राग बहुत ही भले लगे। मैं रसोई में तो संगीत सुन ही नहीं पाती, क्योंकि दिव्य संगीत मेरी आत्मा की गहराइयों में उतरता चला जाता है। रविवार के दिन पीटर स्नान नहीं

कर पाया था। नहाने का टब नीचे ऑफ़िस में गंदे कपड़ों से भरा हुआ रखा था। हम दोनों ऊपर अटारी पर एक साथ गए। हम दोनों आराम से बैठ सकें, इसलिए मुझे जो भी कुशन सामने नज़र आया, मैं ऊपर लेती गई। हम एक पेटी पर बैठ गए। अब हुआ यह कि एक तो वह पेटी बहुत छोटी थी और दूसरे कुशन भी छोटा-सा ही था, हम दोनों एक-दूसरे से बहुत सट कर बैठे हुए थे। सहारा लेने के लिए हमारे पीछे दो और पेटियाँ थीं ही। मोश्ची हमें कंपनी देने के लिए हमारे साथ थी ही।

अचानक पौने नौ बजे मिस्टर वान दान ने सीटी बजाई और पूछा कि कहीं हम मिस्टर डसेल का कुशन तो नहीं ले आए हैं। हम कूदे और कुशन लेकर सीधे नीचे आ गए। बिल्ली और मिस्टर वान दान हमारे साथ थे। यह कुशन ही सारे झगड़े की जड़ था। डसेल इसलिए खफ़ा थे कि मैं वो तकिया उठा लाई थी जिसे वे कुशन की तरह इस्तेमाल करते थे। उन्हें डर था कि उनके तकिए पर पिस्सु चिपक जाएँगे। उन्होंने सारे घर को सिर पर उठा रखा था क्योंकि हम उनका कुशन उठा लाए थे। बदला लेने की नीयत से पीटर और मैंने उनके बिस्तर में दो कड़े ब्रुश घुसेड़ दिए लेकिन जब मिस्टर डसेल ने तय किया कि जाकर अपने कमरे में बैठेंगे तो हमें ये ब्रुश निकाल लेने पड़े। इस छोटे से प्रहसन पर हम हँसते-हँसते लोट-पोट हो गए।

लेकिन हमारा हँसी-मज़ाक जल्दी ही खत्म हो गया। साढ़े-नौ बजे पीटर ने हौले से दरवाज़ा खटखटाया और पापा से कहा कि वे ज़रा ऊपर आएँ, उसे अंग्रेज़ी के एक कठिन वाक्य में दिक्कत आ रही है।

'मुझे तो दाल में कुछ काला नज़र आ रहा है।' मैंने मार्गोट से कहा, 'तय है, पीटर ने किसी और बहाने से यह बात कही है।' जिस तरीके से मर्द लोग बात कर रहे हैं, मैं शर्त लगा कर कह सकती हूँ कि सेंधमारी हो रही थी। पिता जी, मिस्टर वान दान और पीटर लपक कर नीचे पहुँच गए। मार्गोट, माँ, मिसेज़ वान दान और मैं ऊपर इंतज़ार करते रहे। चार डरी-सहमी औरतें बातें ही तो कर सकती हैं। जब तक हमने नीचे ज़ोर का एक धमाका नहीं सुना, हम बातों में लगी रहीं। उसके बाद का मामला है। मेरा सोचना सही था।

उसी वक्त गोदाम में सब कुछ शांत हो गया। घड़ी ने पौने दस बजाए। हमारे चेहरों का रंग उड़ चुका था, इसके बावजूद कि हम डरे हुए थे, हम शांत बने रहे। आदमी लोग कहाँ थे? ये धमाके की आवाज़ कैसी थी? क्या वे लोग सेंधमारों के साथ लड़ रहे थे? हम डर के मारे सोच भी नहीं पा रहे थे। हम सिर्फ़ इंतज़ार ही कर सकते थे।

दस बजे, सीढ़ियों पर कदमों की आवाज़ें आईं। पापा का चेहरा पीला पड़ चुका था, वे नर्वस थे। पहले वे भीतर आए। उनके पीछे मिस्टर वान दान, 'बत्तियाँ बंद कर दो, दबे पाँव ऊपर वाली मंज़िल पर चले जाओ, पुलिस के आने की आशंका है।'

अब डरने का वक्त भी नहीं बचा था। बत्तियाँ बुझा दी गईं थीं। मैंने फटाफट एक जैकेट उठाई और हम ऊपर जाकर बैठ गए। हमें कुछ भी बतानेवाला कोई भी नहीं था। मर्द लोग वापस नीचे जा चुके थे। वे चारों दस बज कर दस मिनट तक वापिस ही नहीं आए। दो लोग पीटर की खुली खिड़की में से निगाह रखे हुए थे। सीढ़ियों के बीच वाले दरवाज़े पर ताला जड़ दिया गया था। बुककेस बंद कर दिया गया था। हमने रात को जलाई जाने वाली बत्ती पर एक स्वेटर डाल दिया। तब उन्होंने हमें सब कुछ बताया कि क्या हुआ था।

पीटर अभी सीढ़ियों पर ही था जब उसने ज़ोर के दो धमाके सुने। वह नीचे गया तो देखता क्या है कि गोदाम के दरवाज़े में से बाईं तरफ़ का आधा फट्टा गायब है। वह लपक कर ऊपर आया और 'होम गार्ड्स' को चौकन्ना किया। वे चारों लपके-लपके नीचे गए। जब वे गोदाम में पहुँचे तो सेंधमार अपने धंधे में लगे हुए थे। बिना सोचे-समझे मिस्टर वान दान चिल्लाए, 'पुलिस...' बाहर भागने की आवाज़ें आईं। सेंधमार भाग चुके थे। फट्टे को दोबारा उसकी जगह पर लगाया गया ताकि पुलिस को इस गैप का पता न चले। लेकिन अभी एक पल भी नहीं बीता था कि फट्टा फिर वापस नीचे गिरा दिया गया। पुरुष लोग...सेंधमारों की ढिठाई पर हैरान थे। मिस्टर वान दान और पीटर गुस्से के मारे थरथराने लगे। मिस्टर वान दान ने दरवाज़े पर कुल्हाड़ी का एक ज़ोरदार प्रहार किया। उसके बाद सब कुछ शांत हो गया। एक बार फिर फट्टे को उसकी जगह पर जमाया गया और एक बार फिर उनका यह प्रयास निष्फल कर दिया गया। बाहर की तरफ़ से एक आदमी और एक औरत टॉर्च की रोशनी फेंकते दिखाई दिए। 'क्या मुसीबत है...' उन आदमियों में से एक भुनभुनाया। लेकिन अब संकट यह था कि उनकी भूमिकाएँ बदल चुकी थीं। अब वे पुलिस के बजाए सेंधमारों वाली हालत में आ गए थे। चारों लपक कर ऊपर आए। डसेल और मिस्टर वान दान ने डसेल साहब की किताबें उठाईं, पीटर ने दरवाज़ा खोला, रसोई तथा प्राइवेट ऑफ़िस की खिड़कियाँ खोलीं। फ़ोन को नीचे फ़र्श पर पटका और आखिरकार चारों बुककेस के पीछे पहुँचने में सफल हो ही गए।

तुम्हारी, ऐन

मंगलवार, 13 जून, 1944

मेरी प्यारी किट्टी,

मेरा एक और जन्मदिन गुज़र गया है। इस हिसाब से मैं पंद्रह बरस की हो गई हूँ। मुझे काफ़ी सारे उपहार मिले हैं— स्प्रिंगर की पाँच खंडों वाली कलात्मक इतिहास पुस्तक, चड्डियों का एक सेट, दो बेल्टें, एक रूमाल, दही के दो कटोरे, जैम की शीशी, शहद वाले दो छोटे बिस्किट, मम्मी-पापा की तरफ़ से वनस्पति विज्ञान की एक किताब, मार्गोट की तरफ़ से सोने का एक ब्रेसलेट, वान दान परिवार की तरफ़ से स्टिकर एलबम, डसेल की तरफ़ से बायोमाल्ट और मीठे मटर, मिएप की तरफ़ से मिठाई, बेप की तरफ़ से मिठाई और लिखने के लिए कॉपियाँ और सबसे बड़ी बात मिस्टर कुगलर की तरफ़ से मारिया तेरेसा नाम की किताब तथा क्रीम से भरे चीज़ के तीन स्लाइस। पीटर ने पीओनी फूलों का खूबसूरत गुलदस्ता दिया। बेचारे को ये उपहार जुटाने में ही अच्छी खासी मेहनत करनी पड़ी। लेकिन वह कुछ और जुटा ही नहीं पाया।

बेहद खराब मौसम–लगातार बारिश, हवाएँ, और उफ़ान पर समुद्र के बावजूद हमले शानदार तरीके से जारी हैं।

कल चर्चिल, स्मट्स, आइजनहावर, तथा आर्मोल्ड उन फ्रांसीसी गाँवों में गए जिन पर ब्रिटिश सैनिकों ने पहले कब्ज़ा कर लिया था और बाद में मुक्त कर दिया। चर्चिल एक टॉरपीडो नाव में थे। इससे तटों पर गोलाबारी की जाती है। बहुत से लोगों की तरह चर्चिल को भी पता नहीं है–डर किस चिड़िया का नाम है। जन्मजात बहादुर।

यहाँ हमारी एनेक्सी की किलेबंदी से डच लोगों के मूड की थाह पाना बहुत मुश्किल है। इस बात में कोई शक नहीं कि लोगबाग बैठे ठाले भी खुश रह लेते हैं। ब्रिटिश सैनिकों ने आखिर अपनी कमर कस ही ली है और अपने मकसद को पूरा करने के लिए निकल पड़े हैं। जो लोग ये दावे करते फिर रहे हैं कि वे ब्रिटिश द्वारा कब्ज़ा किए जाने के पक्ष में नहीं हैं, नहीं जानते कि वे कितनी गलती पर हैं। उनके तर्क का कारण इतना भर है–ब्रिटिश को लड़ते रहना चाहिए, संघर्ष करना चाहिए, और हॉलैंड

को आज़ाद कराने के लिए अपने शूरवीर सैनिकों की शहादत के लिए आगे आना चाहिए। हॉलैंड के साथ-साथ कब्ज़े वाले दूसरे देशों को भी आज़ाद कराना चाहिए, लेकिन उसके बाद ब्रिटिश को हॉलैंड में रुकना नहीं चाहिए। इसके बजाय उन्हें चाहिए कि वे सभी कब्ज़े वाले देशों से हाथ जोड़-जोड़कर माफ़ी माँगें, डच ईस्ट इंडीज़ को उसके सही हकदारों के हाथों में सौंपे और थके, टूटे, हारे और लुटे-पिटे अपने देश ब्रिटेन में लौट जाएँ। मूर्खों की कहीं कोई कमी नहीं है। इसके बावजूद, जैसा कि मैंने कहा, कुछेक समझदार डच लोगों की भी कमी नहीं है। अगर ब्रिटिश ने जर्मनी के साथ शांति संधि पर हस्ताक्षर कर लिए होते तो हॉलैंड और उसके पड़ोसी देशों का क्या हाल हुआ होता। उसके पास ऐसा करने के बहुत मौके मौजूद थे। हॉलैंड जर्मनी बन चुका होता और तब...यह होना ही समाप्ति का संकेत होता। सब कुछ खत्म हो जाने का संकेत।

ऐसे सभी डच लोग, जो अभी भी ब्रिटिश को हिकारत से देखते हैं, ब्रिटेन की खिल्ली उड़ाते हैं, उसके बुढ़ाते लॉर्डों की सरकार को ताने मारते हैं, उन्हें कायर कहते हैं, इसके बावजूद जर्मनों से नफ़रत करते हैं, एक अच्छा-खासा सबक सिखाने के लायक हैं। उनकी जमकर मरम्मत की जानी चाहिए तभी हमारे जंग लगे दिमाग खुलेंगे। उनमें जोश आएगा।

मेरे दिमाग में हर समय इच्छाएँ, विचार, आरोप तथा डाँट-फटकार ही चक्कर खाते रहते हैं। मैं सचमुच उतनी घमंडी नहीं हूँ जितना लोग मुझे समझते हैं। मैं किसी और की तुलना में अपनी कई कमज़ोरियों और खामियों को बेहतर तरीके से जानती हूँ। लेकिन एक फ़र्क है—मैं जानती हूँ कि मैं खुद को बदलना चाहती हूँ, बदलूँगी और काफ़ी हद तक बदल चुकी हूँ।

तब ऐसा क्यों है, मैं अपने आप से यह सवाल पूछती हूँ कि लोग मुझे अभी भी इतना नाक घुसेड़ू और अपने आपको तीसमारखाँ समझने वाली क्यों मानते हैं? क्या मैं वाकई अक्खड़ हूँ? क्या मैं ही अकेली अक्खड़ हूँ या वे सब ही हैं? यह सब वाहियात लगता है, मुझे पता है। लेकिन मैं ऊपर लिखा ये आखिरी वाक्य काटने वाली नहीं। ये वाक्य इतना मूर्खतापूर्ण नहीं है जितना लगता है। मुझ पर हमेशा आरोपों की बौछार करते रहने वाले दो लोग हैं मिसेज़ वान दान और डसेल, उनके बारे में सबको पता है कि वे कितने जड़बुद्धि हैं। मूर्ख जिसके आगे कोई विशेषण लगाने की ज़रूरत नहीं। मूर्ख लोग आमतौर पर इस बात को सहन नहीं कर पाते कि कोई उनसे बेहतर काम करके दिखाए। और इसका सबसे बढ़िया उदाहरण ये दो जड़मति, मिसेज़ वान दान और मूर्खाधिराज डसेल हैं। मिसेज़ वान दान मुझे इसलिए मूर्ख समझती हैं क्योंकि मैं उनके जितनी बीमारियों की शिकार नहीं हूँ। वे मुझे अक्खड़ समझती हैं क्योंकि वे मुझसे भी ज़्यादा अक्खड़ हैं। वे समझती हैं कि मेरी पोशाकें छोटी पड़ गई हैं, क्योंकि उनकी पोशाकें और भी ज़्यादा छोटी पड़ गई हैं। और वे समझती हैं कि मैं अपने आपको कुछ ज़्यादा ही तीसमारखाँ समझती हूँ क्योंकि वे उन विषयों पर

मुझसे भी दो गुना ज़्यादा बोलती हैं जिनके बारे में वे खाक भी नहीं जानतीं। यह बात डसेल पर भी फिट होती है। लेकिन मेरी प्रिय कहावत है–'जहाँ आग होगी, धुआँ भी वहीं होगा'। और मुझे यह मानने में रत्ती-भर भी संकोच नहीं है कि मैं सब कुछ जानती हूँ।

मेरे व्यक्तित्व के साथ सबसे मुश्किल बात यह है कि मैं किसी भी और व्यक्ति की तुलना में अपने आपको सबसे धिक्कारती हूँ, यदि माँ अपनी सलाहें देना शुरू कर देती हैं तो उनके उपदेशों की पोटली इतनी भारी हो जाती है कि मुझे डर लगने लगता है– कैसे होगी इससे मुक्ति! जब तक ऐन का वही पुराना रूप सामने नहीं आ जाता– 'मुझे कोई नहीं समझता।'

यह वाक्य मेरा हिस्सा है। बेशक लगे कि ऐसा नहीं होगा, फिर भी इसमें थोड़े से सच का अंश है। कई बार तो मैं अपने आपको प्रताड़ित करते हुए इतनी गहरे उतर जाती हूँ कि सांत्वना के दो बोल सुनने के लिए तरस जाती हूँ कि कोई आए और मुझे इससे उबारे। काश, कोई तो होता जो मेरी भावनाओं को गंभीरता से समझ पाता। अफ़सोस, ऐसा व्यक्ति मुझे अब तक नहीं मिला है, इसलिए तलाश जारी रहेगी।

मुझे पता है, तुम पीटर के बारे में सोचकर हैरान हो रही हो। नहीं क्या, किट्टी? मैं मानती हूँ कि यह सच है कि पीटर मुझे प्यार करता है, गर्लफ्रेंड की तरह नहीं बल्कि एक दोस्त की तरह। उसका स्नेह दिन पर दिन बढ़ता ही जा रहा है; लेकिन कई बार कोई रहस्यमयी ताकत हम दोनों को पीछे की तरफ़ खींचती है। मैं नहीं जानती कि वो कौन-सी शक्ति है।

कई बार मैं सोचती हूँ कि मैं उसके पीछे जिस तरह प्रेमदीवानी बनी रहती हूँ, उसे बढ़ा-चढ़ाकर बता रही हूँ, लेकिन यह सच नहीं है। इसका कारण यह है कि अगर मैं उसके कमरे में एक-दो दिन के लिए न जा पाऊँ तो मेरी बुरी हालत हो जाती है। मैं उसके लिए तड़पने लगती हूँ। पीटर अच्छा और भला लड़का है; लेकिन उसने मुझे कई तरह से निराश किया है। धर्म के प्रति उसकी नफ़रत, खाने के बारे में उसका बातें करना और इस तरह की और कई बातें मैं बिलकुल भी पसंद नहीं करती। इसके

बावजूद मुझे पक्का यकीन है कि हमने जो वायदा किया है कि कभी झगड़ेंगे नहीं, हम उस पर हमेशा टिके रहेंगे। पीटर शांतिप्रिय, सहनशील और बेहद सहज आत्मीय व्यक्ति है। वह मुझे कई ऐसी बातें भी कह लेने देता है जिन्हें कहने की वह अपनी मम्मी को भी इजाज़त न देता। वह दृढ़ निश्चयी होकर इस मुहिम पर जुटा हुआ है कि वह अपने पर लगे हुए सभी इल्ज़ामों से अपने आपको पाक-साफ़ करे और अपने काम-काज में सलीका लाए। इसके बावजूद वह अपने भीतरी 'स्व' को मुझसे छुपाता क्यों है और मुझे कभी भी इस बात की अनुमति नहीं देता कि मैं उसमें झाँकूँ। निश्चय ही, वह मेरी तुलना में ज़्यादा घुन्ना है, लेकिन मैं अनुभव से जानती हूँ (हालाँकि मुझ पर लगातार यह आरोप लगाया जाता है कि जो कुछ भी जानना चाहिए वह मैं थ्योरी में जानती हूँ, व्यवहार में नहीं) कि कई बार, ऐसे घुन्ने लोग भी, जिनसे संवाद कर पाना बहुत मुश्किल होता है, अपनी बात किसी से कह पाने की उत्कट चाह लिए होते हैं।

पीटर और मैंने, दोनों ने अपने चिंतनशील बरस, एनेक्सी में ही बिताए हैं। हम अकसर भविष्य, वर्तमान और अतीत की बातें करते हैं, लेकिन जैसा कि मैं तुम्हें बता चुकी हूँ, मैं असली चीज़ की कमी महसूस करती हूँ और जानती हूँ कि वह मौजूद है।

क्या इसका कारण यह है कि मैं अरसे से बाहर नहीं निकली हूँ और प्रकृति के लिए पागल हुई जा रही हूँ। मैं उस वक्त को याद करती हूँ जब नीला आसमान, पक्षियों की चहचहाने की आवाज़, चाँदनी और खिलती कलियाँ, इन चीज़ों ने मुझे कभी भी अपने जादू से बाँधा न होता। मेरे यहाँ आने के बाद चीज़ें बदल गई हैं। उदाहरण के लिए छुट्टियों के दौरान की बात है। बेहद गरमी थी। मैं रात के साढ़े ग्यारह बजे तक ज़बरदस्ती आँखें खोले बैठी रही ताकि मैं अपने अकेले के बूते पर अच्छी तरह चाँद को देख सकूँ। अफ़सोस, मेरी सारी मेहनत बेकार गई। चौंध इतनी ज़्यादा थी कि खिड़की खोलने का जोखिम नहीं लिया जा सकता था। कई महीने बाद एक और मौका ऐसा आया था। उस रात मैं ऊपर वाली मंज़िल पर थी। खिड़की खुली हुई थी। जब तक खिड़की बंद करने का वक्त नहीं हो गया, मैं वहीं बैठी रही। यह गहरी, साँवली बरसात की रात थी। तेज़ हवाएँ चल रही थीं। बादलों के बीच लुकाछिपी चल रही थी। इस सारे नज़ारे ने मुझे मंत्रमुग्ध कर दिया था। पिछले डेढ़ बरस में यह पहली बार हो रहा था कि मैं आमने-सामने रात से साक्षात्कार कर रही थी। उस शाम के बाद प्रकृति से साक्षात्कार करने की मेरी चाह लगातार बढ़ती गई थी। तब मुझे चोर उचक्कों, मोटे काले चूहे या पुलिस के छापे का भी डर नहीं रहा था। मैं अकेले ही नीचे चली गई थी और रसोई तथा प्राइवेट ऑफ़िस की खिड़की से प्रकृति के नज़ारे देखती रही थी। कई लोग सोचते हैं कि प्रकृति सुंदर होती है, कई लोग समय-समय पर तारों भरे आसमान के तले सोते हैं, और कई लोग अस्पतालों और जेलों में उस दिन की राह देखते

रहते हैं कि वे कब आज़ाद होंगे और वे फिर से प्रकृति के इस अनूठे उपहार का आनंद ले पाएँगे। प्रकृति गरीब-अमीर के बीच कोई भेदभाव नहीं करती।

यह मेरी कल्पना मात्र नहीं है–आसमान, बादलों, चाँद और तारों की तरफ़ देखना मुझे शांति और आशा की भावना से सराबोर कर देता है। यह वेलेरियन या ब्रोमाइड की तुलना में आज़माया हुआ बेहतर नुस्खा है। शांति पाने की रामबाण दवा। प्रकृति मुझे विनम्रता का उपहार देती है और इससे मैं बड़े से बड़ा धक्का भी हिम्मत के साथ झेल जाती हूँ। लेकिन किस्मत का लिखा यही है–कुछेक दुर्लभ अवसरों को छोड़कर मैं मैल से चीकट हुई खिड़कियों में खुँसे गंदे परदों में से प्रकृति को बहुत ही कम निहार पाती हूँ। इस तरह से देखने से आनंद लेने की सारी भावना ही मर जाती है। प्रकृति ही तो एक ऐसा वरदान है जिसका कोई सानी नहीं।

कई प्रश्नों में से एक प्रश्न जो मुझे अकसर परेशान करता रहता है और अभी भी समझा जाता है यह कह देना बहुत ही आसान है कि ये गलत है, लेकिन मेरे लिए इतना ही काफ़ी नहीं है। मैं इस विराट अन्याय के कारण जानना चाहती हूँ।

संभवतः पुरुषों ने औरतों पर शुरू से ही इस आधार पर शासन करना शुरू किया कि वे उनकी तुलना में शारीरिक रूप से ज़्यादा सक्षम हैं; पुरुष ही कमाकर लाता है; बच्चे पालता पोसता है; और जो मन में आए, करता है, लेकिन हाल ही में स्थिति बदली है। औरतें अब तक इन सबको सहती चली आ रही थीं, जो कि बेवकूफ़ी ही थी। चूँकि इस प्रथा को जितना अधिक जारी रखा गया, यह उतनी ही गहराई से अपनी जड़ें जमाती चली गई। सौभाग्य से, शिक्षा, काम तथा प्रगति ने औरतों की आँखें खोली हैं। कई देशों में तो उन्हें बराबरी का हक दिया जाने लगा है। कई लोगों ने, कई औरतों ने और कुछेक पुरुषों ने भी अब इस बात को महसूस किया है कि इतने लंबे अरसे तक इस तरह की वाहियात स्थिति को झेलते जाना गलत ही था। आधुनिक महिलाएँ पूरी तरह स्वतंत्र होने का हक चाहती हैं।

लेकिन इतना ही काफ़ी नहीं है। महिलाओं का भी पूरा सम्मान किया जाना चाहिए। आमतौर पर देखा जाए तो पूरी दुनिया में पुरुष वर्ग को पूरा सम्मान मिलता है तो महिलाओं ने ही क्या कुसूर किया है कि वे इससे वंचित रहें और उन्हें अपने हिस्से का सम्मान न मिले। सैनिकों और युद्धों के वीरों का सम्मान किया जाता है, उन्हें अलंकृत किया जाता है, उन्हें अमर बना डालने तक का शौर्य प्रदान किया जाता है, शहीदों को पूजा भी जाता है, लेकिन कितने लोग ऐसे हैं जो औरतों को भी सैनिक का दर्जा देते हैं?

'मौत के खिलाफ़ मनुष्य' नाम की किताब में मैंने पढ़ा था कि आमतौर पर युद्ध में लड़ने वाले वीर को जितनी तकलीफ़, पीड़ा, बीमारी और यंत्रणा से गुज़रना पड़ता है, उससे कहीं अधिक तकलीफ़ें औरतें बच्चे को जन्म देते समय झेलती हैं और इन सारी तकलीफ़ों से गुज़रने के बाद उसे पुरस्कार क्या मिलता है? जब बच्चा जनने के बाद उसका शरीर अपना आकर्षण खो देता है तो उसे एक तरफ़ धकिया दिया जाता है, उसके बच्चे उसे छोड़ देते हैं और उसका सौंदर्य उससे विदा ले लेता है। औरत ही तो है जो मानव जाति की निरंतरता को बनाए रखने के लिए इतनी तकलीफ़ों से गुज़रती है और संघर्ष करती है, बहुत अधिक मज़बूत और बहादुर सिपाहियों से भी ज़्यादा मेहनत करके खटती है। वह जितना संघर्ष करती है, उतना तो बड़ी-बड़ी डींगें हाँकनेवाले ये सारे सिपाही मिलकर भी नहीं करते।

मेरा ये कहने का कतई मतलब नहीं है कि औरतों को बच्चे जनना बंद कर देना चाहिए, इसके विपरीत प्रकृति चाहती है कि वे ऐसा करें और इस वजह से उन्हें यह काम करते रहना चाहिए। मैं जिस चीज़ की भर्त्सना करती हूँ वह है हमारे मूल्यों की प्रथा और ऐसे व्यक्तियों की मैं भर्त्सना करती हूँ जो यह बात मानने को तैयार ही नहीं होते कि समाज में औरतों, खूबसूरत और सौंदर्यमयी औरतों का योगदान कितना महान और मुश्किल है।

मैं इस पुस्तक के लेखक श्री पोल दे क्रुइफ जी से पूरी तरह सहमत हूँ जब वे कहते हैं कि पुरुषों को यह बात सीखनी ही चाहिए कि संसार के जिन हिस्सों को हम सभ्य कहते हैं–वहाँ जन्म अनिवार्य और टाला न जा सकने वाला काम नहीं रह गया है। आदमियों के लिए बात करना बहुत आसान होता है–उन्हें औरतों द्वारा झेली जाने वाली तकलीफ़ों से कभी भी गुज़रना नहीं पड़ेगा।

मेरा विश्वास है कि अगली सदी आने तक यह मान्यता बदल चुकी होगी कि बच्चे पैदा करना ही औरतों का काम है। औरतें ज़्यादा सम्मान और सराहना की हकदार बनेंगी। वे सब औरतें जो एक उफ़ भी किए बिना, यह लंबे-चौड़े बखानों के बिना ये तकलीफ़ें सहती हैं।

तुम्हारी

ऐन.एम.फ्रैंक

– अनुवाद : सूरजप्रकाश

अभ्यास

1. “यह साठ लाख लोगों की तरफ़ से बोलनेवाली एक आवाज़ है। एक ऐसी आवाज़, जो किसी संत या कवि की नहीं, बल्कि एक साधारण लड़की की है।” इल्या इहरनबुर्ग की इस टिप्पणी के संदर्भ में ऐन फ्रैंक की डायरी के पठित अंशों पर विचार करें।
2. “काश, कोई तो होता जो मेरी भावनाओं को गंभीरता से समझ पाता। अफ़सोस, ऐसा व्यक्ति मुझे अब तक नहीं मिला...।” क्या आपको लगता है कि ऐन के इस कथन में उसके डायरी लेखन का कारण छिपा है?
3. ‘प्रकृति-प्रदत्त प्रजनन-शक्ति के उपयोग का अधिकार बच्चे पैदा करें या न करें अथवा कितने बच्चे पैदा करें– इस की स्वतंत्रता स्त्री से छीन कर हमारी विश्व-व्यवस्था ने न सिर्फ़ स्त्री को व्यक्तित्व-विकास के अनेक अवसरों से वंचित किया है बल्कि जनांधिक्य की समस्या भी पैदा की है’। ऐन की डायरी के 13 जून, 1944 के अंश में व्यक्त विचारों के संदर्भ में इस कथन का औचित्य ढूँढ़ें।
4. “ऐन की डायरी अगर एक ऐतिहासिक दौर का जीवंत दस्तावेज़ है, तो साथ ही उसके निजी सुख-दुख और भावनात्मक उथल-पुथल का भी। इन पृष्ठों में दोनों का फ़र्क मिट गया है।” इस कथन पर विचार करते हुए अपनी सहमति या असहमति तर्कपूर्वक व्यक्त करें।
5. ऐन ने अपनी डायरी ‘किट्टी’ (एक निर्जीव गुड़िया) को संबोधित चिट्ठी की शक्ल में लिखने की ज़रूरत क्यों महसूस की होगी?

इसे भी जानें

नाज़ी दस्तावेज़ों के पाँच करोड़ पन्नों में ऐन फ्रैंक का नाम केवल एक बार आया है लेकिन अपने लेखन के कारण आज ऐन हज़ारों पन्नों में दर्ज हैं जिसका एक नमूना यह खबर भी है–

नाज़ी अभिलेखागार के दस्तावेज़ों में महज़ एक नाम के रूप में दफ़्न है ऐन फ्रैंक

बादरोलसेन, 26 नवंबर (एपी)। नाज़ी यातना शिविरों का रौंगटे खड़े करने वाला चित्रण कर दुनिया भर में मशहूर हुई ऐनी फ्रैंक का नाम हालैंड के उन हज़ारों लोगों की सूची में महज़ एक नाम के रूप में दर्ज है जो यातना शिविरों में बंद थे।

नाज़ी नरसंहार से जुड़े दस्तावेज़ों के दुनिया के सबसे बड़े अभिलेखागार एक जीर्णशीर्ण फाइल में 40 नंबर के आगे लिखा हुआ है-ऐनी फ्रैंक। ऐनी की डायरी ने उसे विश्व में खास बना दिया लेकिन 1944 में सितंबर माह के किसी एक दिन वह भी बाकी लोगों की तरह एक नाम भर थी। एक भयभीत बच्ची जिसे बाकी 1018 यहूदियों के साथ पशुओं को ढोने वाली गाड़ी में पूर्व में स्थित एक यातना शिविर के लिए रवाना कर दिया गया था।

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद डच रेडक्रास ने वेस्टरबोर्क ट्रांज़िट कैंप से यातना शिविरों में भेजे गए लोगों संबंधी सूचना एकत्र कर इंटरनेशनल ट्रेसिंग सर्विस (आईटीएस) को भेजे थे। आईटीएस नाज़ी दस्तावेज़ों का एक ऐसा अभिलेखागार है जिसकी स्थापना युद्ध के बाद लापता हुए लोगों का पता लगाने के लिए की गई थी।

इस युद्ध के समाप्त होने के छह दशक से अधिक समय के बाद अब अंतरराष्ट्रीय रेडक्रास समिति विशाल आईटीएस अभिलेखागार को युद्ध में ज़िंदा बचे लोगों, उनके रिश्तेदारों व शोधकर्ताओं के लिए पहली बार सार्वजनिक करने जा रही है।

एक करोड़ 75 लाख लोगों के गारे में दर्ज इस रिकार्ड का इस्तेमाल अभी तक परिजनों को मिलाने, लाखों विस्थापित लोगों के भविष्य का पता लगाने और बाद में मुआवज़े के दावों के संबंध में प्रमाण पत्र जारी करने में किया जाता रहा है। लेकिन आम लोगों को इसे देखने की अनुमति नहीं दी गई है।

मध्य जर्मनी के इस शहर में 25.7 किलोमीटर लंबी अलमारियों और कैबिनेटों में सग्रहित इन फ़ाइलों में उन हज़ारों यातना शिविरों, बंधुआ मज़दूर केंद्रों और उत्पीड़न केंद्रों से जुड़े दस्तावेज़ों का पूर्ण सग्रह उपलब्ध है।

किसी ज़माने में थर्ड रीख के रूप में प्रसिद्ध इस शहर में कई अभिलेखागार हैं। प्रत्येक में युद्ध से जुड़ी त्रासदियों का लेखाजोखा रखा गया है।

आईटीएस में एनी फ्रैंक का नाम नाज़ी दस्तावेज़ों के पाँच करोड़ पन्नों में केवल एक बार आया है वेस्टरबोर्क से 19 मई से 6 सितंबर 1944 के बीच भेजे गए लोगों से जुड़ी फ़ाइल में फ्रैंक उपनाम से दर्जनों नाम दर्ज हैं।

इस सूची में ऐनी का नाम, जन्मतिथि, एम्सटर्डम का पता और यातना शिविर के लिए रवाना होने की तारीख दर्ज है। इन लोगों को कहाँ ले जाया गया वह कालम खाली छोड़ दिया गया है। आईटीएस के प्रमुख यूडो जोस्त ने पोलैंड के यातना शिविर का ज़िक्र करते हुए कहा– यदि स्थान का नाम नहीं दिया गया है तो इसका मतलब यह आशविच था। ऐनी, उनकी बहन मार्गोट व उसके माता पिता को चार अन्य यहूदियों के साथ 1944 में गिरफ्तार किया गया था। ऐनी डच नागरिक नहीं जर्मन शरणार्थी थी। यातना शिविरों के बारे में ऐनी की डायरी 1952 में 'ऐनी फ्रैंक दी डायरी ऑफ़ द यग गर्ल' शीर्षक से छपी थी।

*– **साभार जनसत्ता 27 नवंबर, 2006***

लेखक परिचय

मनोहर श्याम जोशी

जन्म सन् 1935, कुमाऊँ में। हिंदी के प्रसिद्ध पत्रकार और टेलीविज़न धारावाहिक लेखक। लखनऊ विश्वविद्यालय से विज्ञान स्नातक। ***दिनमान*** पत्रिका में सहायक संपादक और ***साप्ताहिक हिंदुस्तान*** में संपादक के रूप में कार्य। सन् '84 में भारतीय दूरदर्शन के प्रथम धारावाहिक ***हम लोग*** के लिए कथा-पटकथा लेखन शुरू करने के बाद से मृत्युपर्यंत स्वतंत्र लेखन। प्रमुख रचनाएँ: ***कुरु कुरु स्वाहा, कसप, हरिया हरक्यूलीज़ की हैरानी, हमज़ाद, क्याप*** (कहानी संग्रह); **एक दुर्लभ व्यक्तित्व, कैसे किस्सागो, मंदिर घाट की पौड़ियाँ**, ***ट-टा प्रोफ़ेसर षष्ठी वल्लभ पंत***, **नेताजी** ***कहिन, इस देश का यारों क्या कहना*** (व्यंग्य-संग्रह); ***बातों-बातों में, इक्कीसवीं सदी*** (साक्षात्कार-लेख-संग्रह); ***लखनऊ मेरा लखनऊ, पश्चिमी जर्मनी पर एक उड़ती नज़र*** (संस्मरण-संग्रह); ***हम लोग, बुनियाद, मुंगेरी लाल के हसीन सपने*** (टेलीविज़न धारावाहिक)। ***क्याप*** के लिए 2005 के साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित। निधन सन् 2006, दिल्ली में।

आनंद यादव

जन्मः 1935, कागल, कोल्हापुर (महाराष्ट्र) में। पूरा नाम ***आनंद रतन यादव***। पाठकों के बीच ***आनंद यादव*** के नाम से परिचित। मराठी एवं संस्कृत साहित्य में स्नातकोत्तर डॉ. आनंद यादव बहुत समय तक पुणे विश्वविद्यालय में मराठी विभाग में कार्यरत रहे। अब तक लगभग पच्चीस पुस्तकें प्रकाशित। उपन्यास के अतिरिक्त कविता-संग्रह समालोचनात्मक निबंध आदि पुस्तकें भी प्रकाशित। ***भारतीय ज्ञानपीठ*** से प्रकाशित ***नटरंग*** हिंदी-पाठकों के बीच भी चर्चित। यहाँ प्रस्तुत अंश ***जूझ*** उपन्यास से लिया गया है जो सन् 1990 में ***साहित्य अकादमी*** पुरस्कार से सम्मानित है।

ओम थानवी

जन्म सन् 1957 में। शिक्षा-दीक्षा बीकानेर में। राजस्थान विश्वविद्यालय से व्यावसायिक प्रशासन में एम.कॉम। एडीटर्स गिल्ड ऑफ़ इंडिया के महासचिव। 1980 से 1989 तक नौ वर्ष 'राजस्थान पत्रिका' में रहे। 'इतवारी पत्रिका' के संपादन ने साप्ताहिक को विशेष प्रतिष्ठा दिलाई। सजग और बौद्धिक समाज में इतवारी पत्रिका ने अपने दौर में विशिष्ट स्थान बनाया। अपने सामाजिक और सांस्कृतिक सरोकारों के लिए जाने जाते हैं। अभिनेता और निर्देशक के रूप में स्वयं रंगमंच पर सक्रिय रहे हैं। साहित्य, कला, सिनेमा, वास्तुकला, पुरातत्त्व और पर्यावरण में गहन दिलचस्पी रखते हैं। अस्सी के दशक में सेंटर फ़ॉर साइंस एनवायरमेंट (सीएसई) की फ़ेलोशिप पर राजस्थान के पारंपरिक जल-स्रोतों पर खोजबीन कर विस्तार से लिखा। पत्रकारिता के लिए अन्य पुरस्कारों के साथ गणेशशंकर विद्यार्थी पुरस्कार प्रदत्त। 1999 से संपादक के नाते दैनिक जनसत्ता दिल्ली और कलकत्ता के संस्करणों का दायित्व सँभाला। पिछले 17 वर्षों से इंडियन एक्सप्रेस समूह के हिंदी दैनिक 'जनसत्ता' में संपादक के रूप में कार्यरत।

ऐन फ्रैंक

ऐन फ्रैंक का जन्म 12 जून, 1929 को जर्मनी के फ्रैंकफ़र्ट शहर में और मृत्यु नाज़ियों के यातनागृह में 1945 के फरवरी या मार्च महीने में। ऐन फ्रैंक की डायरी दुनिया की सबसे ज़्यादा पढ़ी गई किताबों में से एक है। मूलतः डच भाषा में 1947 में प्रकाशित यह कृति अंग्रेज़ी में ***दी डायरी ऑफ़ द यंग गर्ल*** शीर्षक से 1952 में प्रकाशित हुई। तब से इसके संपादित, असंपादित, आलोचनात्मक, विस्तृत–अनेक तरह के संस्करण आ चुके हैं, इस पर फ़िल्म, नाटक, धारावाहिक इत्यादि का निर्माण हो चुका है और यह डायरी किसी–न–किसी वजह से लगातार चर्चा में रही है।

टिप्पणी